

(अखिलवैद्यकग्रन्थानां शिरोभूषणः)

श्रीमद्द्विपवर्यगदाधरतनयवङ्गसेन-

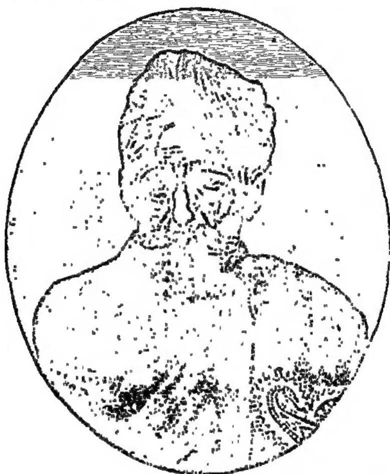
विदुषा विरचितः



खेमराज श्रीकृष्णदास श्रेष्ठिना

मुंबई

कविवर श्रीलालाशालिग्रामजी वैश्य।



पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम् प्रेस—मुंबई.

तथा—
गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" प्रेस—कल्याण—
मुंबई.

यह पुस्तक खेमराज श्रीकृष्णदासने बम्बई खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लेन निज 'श्रीवेंकटेश्वर' स्टीम् प्रेसमें अपने लिये छापकर यहीं प्रकाशित की।

अर्पण-पत्रिका.

श्रीमन्निखिलगुणनिकेतन परमोदार धीरचरित श्रेष्ठिवर्य्य श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजी "श्रीवेङ्कटेश्वर"स्टीम् प्रेसाध्यक्ष बम्बई ।

महोदय !

देशी भाषाके ग्रंथकारोंको आश्रय देनेमें आपका अलौकिक यत्न है, संस्कृत साक्षरमण्डलमें आपने उत्तम प्रतिष्ठा प्राप्त की है। हिन्दी साहित्यका उद्धार करनेमें आप सदैव यत्नवान् रहते हो। योग्य-का आदर करनेमें आप प्रसिद्ध परीक्षक और गुणज्ञ हो। तथा गो, ब्राह्मण, अनाथ, विधवा और दीन भारत-वासियोंकी रक्षा करनेमें आप सबसे अग्रसर हो। अत एव आपके पवित्र नामके साथ यह "भाषाटीकासमेत वङ्गसेन" ग्रन्थ सप्रेम, सादर और सविनय समर्पित किया जाता है।

विनयावनत,

शङ्करलाल हरिशङ्कर.

भूमिका।

जबसे हिन्दूसौभाग्यका निष्कलङ्क मयंक अस्ताचलमें अस्त हुआ है, जबसे भारतलक्ष्मी अन्तर्हिता हुई है, जबसे आर्य्यभूमिमें वारंवार यवन लोगोंका पदार्पण हुआ है और जबसे राजनीति, समाजनीति और धर्म्मनीतिमें विशेष विप्लव (गोलमाल) हुआ है उस समयसे आर्य्य ऋषिप्रोक्त प्रायः सम्पूर्ण हिन्दूशास्त्र लुप्तसे हो गये और उन्हींके साथ भरताका महार्घरत्न और समस्त पृथ्वीका गौरवस्वरूप हमारा आयुर्वेद शास्त्र भी अतिशय शोचनीय अवस्थाको प्राप्त हो गया।

हिन्दूराजाओंके समय समस्त शास्त्रोंकी चर्चा थी, विद्याकी उज्ज्वल आभा भारतवर्षको प्रकाशित करती थी, उस समय हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ और भारतसन्तानकी स्वास्थ्यरक्षाका एकमात्र अवलम्ब समझा जाता था। आयुर्वेदीय चिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल और भारतसन्तानकी माताके समान हितकारिणी चिकित्सा समझी जाती थी। पूर्वकालमें हमारे पूर्वपुरुष आयुर्वेदीय चिकित्साके प्रभावसे शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्यलाभ करके धर्म्म, अर्थ, काम और मोक्ष इस पुरुषार्थचतुष्टयका साधन करते हुए दीर्घकालतक सुखपूर्वक संसारयात्राको व्यतीत करते थे। आयुर्वेदीय नियमानुसार चलनेसे यहाँ कदापि रोगसंकट उपस्थित नहीं होता था। कदाचित् कोई रोग उत्पन्न हो गया तो एक बार उससे मुक्त होनेपर फिर कभी भी किसीको रोगकी भीषण मूर्तिके दर्शन नहीं करने पड़ते थे। आयुर्वेदीय चिकित्सा पूर्ण होनेके कारण भारतसन्तानको कभी किसी विदेशी चिकित्साका आश्रय नहीं लेना पड़ता था। इस देशमें उत्पन्न होनेवाली साधारण वनस्पतियोंके द्वारा उसके रोग दूर किये जाते थे। हमारे देशमें उत्पन्न हुई औषधियां हमारी प्रकृतिके अनुकूल होनेके कारण प्राचीन महर्षियोंने ठीक हमारे लिये ही आयुर्वेदशास्त्रकी रचना की थी।

आयुर्वेदशास्त्र केवल भारतमें ही सर्वोत्कृष्ट चिकित्साशास्त्र नहीं समझा जाता था, बल्कि कभी समस्त पृथ्वीभरके चिकित्साशास्त्रोंमें आयुर्वेदशास्त्रने अत्युच्च आसन ग्रहण किया था।

जिस समय अरब और मिश्रदेश प्राचीनताके अभिमानमें चूर्ण थे, जब पुराने रोम और ग्रीक देश सभ्यताकी शेखीमें निमग्न थे, जिस समय सभ्यशिरोमणि पृथ्वीका आभूषणस्वरूप यूरोप देश असभ्यताके घोर अन्धकारसे आच्छादित था, तबसे ही हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंमें प्राचीन और सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है।

आयुर्वेदकी प्राचीनता और उत्कृष्टताके विषयमें कतिपय विदेशी विद्वानोंके मत नीचे लिखे जाते हैं।

अबसे अनुमान तेरहसौ वर्ष पहले भुवनविजयी ग्रीकदेशाधिपति महावीर एलेकजेंडर असाध्य रोगोंकी चिकित्साके लिये भारतवर्षीय वैद्योंको सदैव बड़े यत्न और सत्कारके साथ अपने यहाँ रखता था।

बारहसौ वर्ष पहले बुगदादपति खलीफा हारूंरसीद आयुर्वेदीय चिकित्साको पृथ्वीभरकी सम्पूर्ण चिकित्साओंमें श्रेष्ठ समझकर अपनी शरीररक्षाके लिये सदैव भारतवर्षीय वैद्योंको अपने राजमंदिरमें उपस्थित रखता था।

अबुल उल नामक प्रसिद्ध अर्बी भाषाके ग्रन्थमें लिखा है कि अष्टम शताब्दीमें भारतवर्षके पंडित लोग बुगदादकी राजसभामें उपस्थित होकर आयुर्वेद और ज्योतिषशास्त्रकी शिक्षा देते थे। 'सरक, सर्सस और वेदान' यह तीन भारतवर्षसे अरबदेशमें लाये गये। मालूम होता है कि ये तीनों ग्रंथ चरक, सुश्रुत, निदान इन तीनोंके अपभ्रंश नामान्तर हैं।

हकीम जालीनूस अपने रिसालेमें लिखते हैं कि, आयुर्वेदविद्या प्रथम भारतवर्षसे मिसरमें आई फिर मिसरसे यूनान और अरबदेशमें गई। वह यह भी लिखता है कि, मेरे गुरु अफलातूंने भारतवर्षमें जाकर कालज्ञानके ३६ लक्षण और बहुतसे ग्रंथ पढ़े। उनमेंसे कुछ सारभाग संग्रह करके

एक काठकी तख्तीपर लिखाकर सदैव अपने गलेमें जामेके भीतर पहने रहते थे और कभी किसीको प्रगट नहीं होने देते थे। जब उनकी मृत्युका समय समीप आ गया तब उन्होंने अपनी स्त्रीसे कहा कि, इस तख्तीको मेरी कबरमें गाड़ देना और इस विषयको अत्यन्त गुप्त रखना। स्त्रीने उनकी आज्ञानुसार उस तख्तीको पतिकी लाशके साथ कबरमें गाड़ दिया। इस प्रकार उस तख्तीको कबरमें गड़ी हुई देखकर मुझे अत्यन्त आश्चर्य हुआ और मैंने विचार किया कि, गुरुजी आप तो मरे ही किन्तु अपनी विद्याको भी मार गये। तब मैंने गुरुजीकी कबरको खोदकर तख्तीको निकाल लिया। पश्चात् उस विद्यामें मैंने अच्छे प्रकार योग्यता प्राप्त की, फिर मेरी देखादेखी अरस्तू आदि विद्वानोंने हिन्दुस्तानमें जाकर आयुर्वेदको अध्ययन किया।

सुप्रसिद्ध डॉक्टर ओयाज भी आयुर्वेदीय चिकित्साके विषयमें कहते हैं कि, हिन्दुस्तानकी आर्य्यचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी मूल है और सम्पूर्ण संसार उसका ऋणी है।

प्रोफेसर जे. एफ. रायल. डी. आर. एल्. एम्. जी. सी. जो कि, प्रथम बंगालकी सेनाके डॉक्टर थे और एशियाटिक व मेडिकल व फिजीकल सोसायटी एडिंगबर्ग और मेडीको सर्जीकल सोसायटी लंडनके मेम्बर थे। वह अपने व्याख्यानमें कहते हैं कि–हिन्दुओंका आयुर्वेदशास्त्र बहुत प्राचीन है, अरब और यूनानवालोंसे कहीं पहला है। किसी समय अरबदेशमें आयुर्वेदीय चिकित्साका विशेष प्रचार था। अरबवालोंने पहले आर्य्यचिकित्सासे ही चिकित्साकी शिक्षा प्राप्त की थी। अभीतक उस देशमें श्वासरोगमें धतूरेके बीज और कृमिरोगमें कौंचके बीज व्यवहार किये जाते हैं।

सुप्रसिद्ध संस्कृतशास्त्रके पूर्ण विद्वान् प्रोफेसर होरेस, हेमेन, विलसन् एम्. ए. एफ्. आर. एस्. प्रेसीडेन्सी मेडिकल सोसाइटी कलकत्ता और प्रोफेसर ऑफ संस्कृत युनिवार्सिटी कॉलेज ऑफ फोर्ट जो कि,अत्यन्त विख्यात और संस्कृतविद्याके पूर्ण पारगामी माने जाते हैं, उन्होंने लिखा है कि–भारतवर्षमें बहुत पुराने समयसे चिकित्सा, ज्योतिष और दर्शन आदिके पारदर्शी विद्वान् विद्यमान हैं।

जिस समय यूरोपदेशमें शरीरविद्या (एनाटमी) का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था उस समय भारतवासियोंने जैसी औषधिचिकित्सा और शस्त्रचिकित्सामें पारदर्शिता दिखाई थी उसी प्रकार शरीरविद्याकी भी उन्नति की थी।

इत्यादि प्रमाणोंसे सिद्ध होता है कि,हमारा आयुर्वेदशास्त्र सम्पूर्ण चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ है।

हमारा आयुर्वेदशास्त्र जिस गम्भीर सत्यके ऊपर प्रतिष्ठित है उस प्रकार अन्य चिकित्सा शास्त्रोंकी दृढ नींव नहीं है। कारण कि–जिनका ज्ञान, भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालके विषयको निरंतर हस्तामलकवत् अवलोकन करता है, आयुर्वेदशास्त्र उन्हीं त्रिकालदर्शी मुनिवृन्दोंकी असाधारण अन्वेषणाका अपूर्व फल है।

यद्यपि देशके सौभाग्यसे फिर आयुर्वेदकी आलोचनाका समय आ गया है। इस समय मृतप्राय आर्य्यचिकित्सा भारतसन्तानको अपनी ओर आकर्षित देखकर फिर जीवित होना चाहती है। यद्यपि अनेक भारतवासियोंकी आर्य्यचिकित्साके ऊपर फिर दिनपर दिन प्रीति बढ़ती जाती है परन्तु इसकी जितनी उन्नति होनी चाहिये उसके अभी शतांश भी नहीं हुई जो लोग देशमें शिक्षित और सभ्य संसारमें अग्रसर समझे जाते हैं उनकी देशी चिकित्सामें किञ्चित् भी श्रद्धा नहीं है। उनकी दृष्टिमें देशी चिकित्सा अतीव घृणाके योग्य समझी जाती है।

आज कल पाश्चात्य चिकित्सापद्धति अत्यन्त आडम्बर और सौन्दर्यपूर्ण होनेके कारण सभ्यसंसारमें श्रेष्ठ समझी जाती है। भारतके प्रत्येक स्थानमें बडे बडे विशाल मेडिकलहॉलखुले हुए हैं। उनमें लाल, पीली,हरी,अनेक प्रकारकी सुन्दर काँचकी शीशियां नवीन भारतकी दृष्टिमें अपूर्व चकाचौंध उत्पन्न कर रही हैं।

सुन्दर दीर्घाकृति साइनबोर्ड, विलायती, मेज,टेबुल, कुर्सी, विलायती बने हुए अनेक प्रकारके अस्त्र और यन्त्रोंकी बाह्य रचनायें भारतवासियोंके हृदयमें अद्भुत चमत्कार उत्पन्न कर रही हैं। सर्वत्र सभ्यसमाजमें डॉक्टरोंका ही आह्वान हो रहा है। वैद्य लोग विचारे मूर्ख या निरे गँवार समझे जाते हैं।

भारतवर्षके प्रत्येक प्रान्तमें कितने ही मेडिकल कॉलेज, कितने ही अस्पताल, और कितने ही चिकित्सालय प्रतिष्ठित हैं। परन्तु हमारी आयुर्वेदचिकित्सा इन सर्व साधनोंसे शून्य होनेपर भी अन्य चिकित्साओंकी अपेक्षा अभीतक सर्वोत्कृष्ट पदपर प्रतिष्ठित है। प्रायः देखा जाता है कि जबतक रोग सहज होता है, जबतक बल मांसका क्षय नहीं होता और जबतक रोग जड़ नहीं पकड़ लेता तबतक रोगको दूर करनेके लिये अनेक डाक्टर समर्थ होते हैं, किन्तु जब रोग सांघातिक आकार धारण कर लेता है और जब शरीरगत रस, रुधिर, मांस, मज्जादि सप्तधातुमें विशेष रूपसे विकृत होकर आयु क्षीण हो जाती है उस समय कोई भी डॉक्टर रोगको दूर करनेके लिये समर्थ नहीं होता, केवल एक वैद्यमहाशय ही समर्थ हो सकते हैं।

इसमें संदेह नहीं कि यदि अब भी आयुर्वेदशास्त्रकी अच्छे प्रकारसे आलोचना कीजाय एवं शिक्षित समाज आयुर्वेदीय चिकित्साका अनुसरण करे तो सम्पूर्ण जगत् अवश्य मुक्तकंठसे आयुर्वेदकी श्रेष्ठता स्वीकार करके उसका एकान्त पक्षपाती बन जायगा।

चरकमें लिखा है—"त्रिविधं खलु रोगविशेषज्ञानं भवति। तद् यथा—आप्तोपदेशः प्रत्यक्षमनुमानञ्चेति। त्रिविधे त्वस्मिन् ज्ञानसमुदाये पूर्वमाप्तोपदेशात् ज्ञानं ततः प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्षोपपद्यते। किं ह्यनुपदिष्टपूर्वं प्रत्यक्षानुमानाभ्यां परीक्ष्यमाणो विद्यात्" (चरक–विमानस्थान–चतुर्थ अध्याय)।

अर्थात् रोगका ज्ञान तीन प्रकारसे होता है जैसे–आप्तोपदेश–प्रत्यक्ष और अनुमानसे।

इन तीनों उपायोंमें प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा (रोगका) ज्ञान प्राप्त होता है फिर प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा उसकी परीक्षा होती है। किन्तु जो पहले ही आप्तोपदेशके द्वारा जाना नहीं गया उसकी प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा किस प्रकार परीक्षा हो सकती है?

चरकके इस महावाक्यके द्वारा यह कदापि सम्भव नहीं होसकता कि आप्तोपदेशवर्जित, प्रत्यक्ष और अनुमानपरायण पाश्चात्यपंडितगण सैकड़ों वर्षोंसे जगत्‌को पृथा विज्ञानके धुयेंके द्वारा उद्भासित करनेपर भी अभीतक प्रकृतसत्यतक पहुँचकर कृतकार्य हुए हों।

देखो! आप्तोपदेशके द्वारा किस प्रकार ज्ञान प्राप्त होता है उसको यहां दिखाते हैं। आप्तगण कहते हैं कि–यह रोग रोगका प्रकोपक है, इसप्रकार रोगका पूर्वरूप, रूप, साध्यासाध्यलक्षणआदि प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा जानकर पश्चात् प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा उसकी परीक्षा आरम्भ करते हैं। जैसे–राजयक्ष्माके उत्पन्न होनेसे पहले रोगीको स्वप्नमें काक, शुक और मयूरादिके दर्शनका ज्ञानका होता है, परन्तु विना आप्तोपदेशके हम उक्त स्वप्नके वृत्तान्तको किस प्रकार जान सकते हैं? और रोगीके निकट किसप्रकार स्वप्नसम्बन्धी विषयक बात पूँछ सकते हैं? और जो हम आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह बात जान लें कि राजयक्ष्माके पूर्वरूपमें उपर्युक्त काक, शुकादिक पक्षी दिखाई देते हैं तब तो किंचित् लक्षण प्रतीत होते ही स्वप्नसम्बन्धी सम्पूर्ण विषय रोगीसे अच्छे प्रकार मालूम करके राजयक्ष्माका सहजमें निर्णय कर सकते हैं।

आप्तगण कहते हैं कि–" असाध्यो बलवान् यश्च केशसीमन्तकृज्ज्वरः "

अर्थात् जिस ज्वरमें रोगीके बालोंमें गांठेंसी गुंद जाती हैं वह ज्वर अत्यन्त बलवान् और असाध्य जानना।

पहले हम यदि आप्तोपदेशके द्वारा इन अरिष्टके लक्षणोंको नहीं जानते तो रोगीकी परीक्षा करनेके समय उसके बालोंकी ओर कभी लक्ष्य नहीं देते?

महर्षि कहते हैं—

"वायुः पित्तं कफश्चोक्तः शरीरे दोषसंग्रहः।
मानसः पुनरुद्दिष्टो रजश्च तम एव च" ॥

अर्थात्–वात, पित्त और कफ यह तीन शारीरिक दोष और रज, तम यह दो मानसिक दोष इन सम्पूर्ण शारीरिक और मानसिक दोषोंके विकृत होनेसे सब प्रकारके शारीरिक और मानसिक रोग उत्पन्न

होते हैं। जो आप्तोपदेशके द्वारा पहलेसे ही यह वस्तु नहीं मालूम होता तो वात, पित, कफ (शारीरिक दोष) और रजस्तम (मानसिक दोष) के विषयमें किस प्रकार हम ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं, अतएव इनके प्रकोप और शमनादिके सम्बन्धमें सर्वथा अन्धकार होनेसे अन्यान्य चिकित्साशास्त्रोंने उपर्युक्त दोषोंके विषयमें कुछ भी उल्लेख नहीं किया है।

रोगोत्पत्ति होनेसे पहले ही रोगको कहनेवाले आप्तोपदेशका परिहार करके केवल प्रत्यक्ष और अनुमानके द्वारा रोगका ज्ञान प्राप्त करना कदापि सम्भव नहीं हो सकता।

आयुर्वेदाचार्य्य महात्मा महर्षिगण कहते हैं कि–मिथ्या आहार और विहारादिके द्वारा वातपित्तादि दोष विकृत अथवा वर्द्धित होकर रसरक्तादि सप्तधातुओंको विकृत करके धातुवैषम्य अथवा अनेक प्रकारके रोगोंकी उत्पत्ति करते हैं।

इन मुख्य दोषोंके विषयमें अच्छे प्रकारसे परिचय नहीं होनेसे किसप्रकार रोग और चिकित्साका ज्ञान होना सम्भव हो सकता है?

आज दश ग्यारह वर्षसे देशका सर्वनाश करनेवाले प्लेगकी चिकित्साके लिये संसारमें चारों ओर कोलाहल मच रहा है। इसको किसी प्रसिद्ध रोगके नामके साथ जोड़ देने एवम् इसकी यथार्थ चिकित्साकी अन्वेषणाके लिये आज कितनेक वर्षोंसे गवर्नमेन्टके द्वारा उत्साहित किये हुए बहुतसे विज्ञानविशारद डॉक्टर नियत हुए हैं। वे अपने अपने कल्पित उपायोंका अवलम्बन करके अनेक प्रकारके यत्न और औषधियोंकी कल्पना कर रहे हैं। किन्तु उनकी चिकित्सासे प्लेगके रोगियोंका अभीतक कुछ भी हितसाधन नहीं हुआ।

जहाँ चिकित्साका नाम सुनकर असाध्य रोगी भी एकवार निराशाको त्यागकर शय्यासे उठ बैठते हैं वहाँ आज उक्त चिकित्साके नामसे रोगी एकदम भयभीत हो जाते हैं।

परन्तु आयुर्वेदज्ञ वैद्य प्रथम आप्तोपदेशके द्वारा इसको ज्ञानके अधीन करके पश्चात् इसकी चिकित्सा करनेमें जरा भी विचलित नहीं होते।

महर्षि चरकाचार्य्य अपनी संहितामें लिखते हैं कि–

"विकारनामाकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवा स्थितिः" ॥

अर्थात् जो कभी किसी रोगका नाम समझमें नहीं आवे तो वैद्यको उसमें लज्जित नहीं होना चाहिये क्योंकि शास्त्रमें कुछ रोगोंके नाम लिखे नहीं हैं। रोग अनन्त हैं। उन सबका वैद्यक ग्रंथोंमें भी विवरण मिलना सर्वथा असम्भव है। इस विषयमें महर्षि चरक कहते हैं कि-

"स एव कुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः।
स्थानान्तरगतश्चैव जनयत्यामयान् बहून् ॥
तस्माद्विकारप्रकृतिरधिष्ठानान्तराणि च।
समुत्थानविशेषांश्च बुद्ध्वा कर्म्म समाचरेत्" ॥

अर्थ–एक दोष कुपित होकर कारणविशेषसे शरीरके भिन्न २ स्थानोंमें जाकर नानाप्रकारके रोगोंको उत्पन्न करता है इस कारण रोगकी प्रकृति, स्थान और निदानकी विशिष्टतापर विशेष ध्यान रखकर चिकित्सा करनी चाहिये।

अपि च "यथा शकुनयः सर्वदिक्षु परिपतन्तः स्वच्छायां नातिवर्तन्ते तथा स्वधातुवैषम्ये निमित्ताः सर्वविकारा वातपित्तकफा नातिवर्तन्ते। वातपित्तकफानान्तु पुनः समुत्थानसंस्थानप्रकृतिविशेषान् अभिसमीक्ष्य तदात्मकानपि च सर्वविकारांस्तानेवोपदिशन्ति बुद्धिमन्तः"

अर्थ–जिस प्रकार पक्षी समस्त दिशाओंमें परिभ्रमण करनेपरभी अपनी छायाको उल्लंघन करनेके लिये समर्थ नहीं होता उसी प्रकार सम्पूर्ण रोग स्वधातुके विकृत होनेसे उत्पन्न हुए होनेपर भी वात,

पित्त और कफके उलंघन करनेको समर्थ नहीं होते। इस देशके विद्वानोंने वात, पित्त और कफका निदान, स्थान, लक्षण, प्रकृति और समयके विचारको हृदयङ्गम करके समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इस दोषत्रयके अन्तर्गत किया है। इस कारण देश, काल और पात्रके भेदसे रोग चाहे किसी प्रकारका नवीन आकार क्यों न धारण करे किन्तु वह वातज, पित्तज अथवा श्लैष्मिक, द्वन्द्वज, अथवा सान्निपातिक इनमेंसे किसी न किसी प्रकारका अवश्य होगा। आयुर्वेदीय चिकित्सक ऐसे नवीन रोगोंको देखकर कदापि भयभीत नहीं होते। महर्षियोंने समस्त रोगोंको वात, पित्त और कफ इन तीन दोषोंके अन्तर्गत करके जगतका महान् उपकार किया है। कितने ही मनुष्योंका कहना है कि-जिस प्रकार डॉक्टर लोग अनेक यन्त्रोंके द्वारा सहजमें ही रोगोंका निर्णय करते हैं, उस प्रकार वैद्यलोग कदापि सहजमें रोगका निर्णय नहीं कर सकते। किंतु उनकी यह बात कुछ युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। क्योंकि-देखो! राजयक्ष्मा या हृदयरोगमें डॉक्टरलोग (स्टेथास्कोप) नामक यंत्रके द्वारा शब्दके तारतम्यसे रोगका सिद्धान्त निश्चय करते हैं। किन्तु वैद्यलोगोंका केवल नाड़ीपरीक्षाके द्वारा स्पर्श मात्रके तारतम्यसे रोगका निर्णय करना जितना क्लिष्ट और सूक्ष्म है उतना स्टेथास्कोपके द्वारा वक्षस्थल या हृदयकी परीक्षा करके शब्दके तारतम्यको जानना कठिन और सूक्ष्म नहीं है। इसके अतिरिक्त महर्षियोंने आयुर्वेदीय चिकित्सकोंके लिये एक और भी उत्तम सुभीता कर दिया है कि उन्होंने प्रत्येक रोगके इस प्रकार वैशेषिक लक्षण वर्णन किये हैं कि जिनके द्वारा नाड़ीके विना स्पर्श किये ही वैद्य महाशय यक्ष्मा और हृदय आदि रोगोंका सहजमें ही निश्चय कर सकते हैं। किन्तु डॉक्टर महोदय स्टेथास्कोपके सिवाय अन्य किसी प्रकार भी उक्तरोगोंके निर्णय करनेमें समर्थ नहीं हो सकते। अत एव जिन डॉक्टरोंकी श्रवणशक्ति नष्ट होगई है, उनके लिये राजयक्ष्मा और हृदयरोगका निर्णय करना सर्वथा असम्भव जान पड़ता है। विशेषकर जिस स्थानमें विशेष कोलाहल होरहा हो अथवा चित्तकी प्रवृत्ति किसी अन्य विषयमें लगी हो ऐसे अवसरपर डॉक्टर महोदय कदापि उक्त रोगकी परीक्षा करनेमें कृतकार्य नहीं हो सकते। अतएव स्पष्ट सिद्ध होता है कि आयुर्वेदीय वैद्योंका रोगपरीक्षाका प्रकार अत्यन्त समीचीन है।

अन्तर्विद्रधि (यावसेस्) रोगके विषयमें कुछ चरकके वचन लिखते हैं। "अथासां विद्रधीनां साध्यासाध्यत्वविशेषविज्ञानार्थं स्थानकृतलिंगविषमुपदेक्ष्यामः। तत्र प्रधानमर्मजायां विद्रध्यां हृद्घट्टनतमकप्रमोहकासाः क्लोमजायान्तु विपाका मुखशोषगलग्रहाः, यकृज्जायां श्वासः प्लीहजायां मुखश्वासोपरोधः वृक्कजायां पार्श्वपृष्ठकटिग्रहः, नाभिजायां हिक्का, कुक्षिजायां कुक्षिपार्श्वान्तरांसशूलं, वंक्षणजायां सक्थिसादः, बस्तिजायां कृच्छ्रमूत्रपूतिवर्चस्त्वञ्चेति-

अर्थात् हृदयमें विद्रधि होनेपर हृदयमें पीड़ा, तमक, श्वास, इन्द्रियोंमें अज्ञान और खांसी उत्पन्न होती है। क्लोमस्थानमें विद्रधि होनेसे पिपास,मुखशोष और गलस्तम्भरोग उत्पन्न होता है। यकृत्में विद्रधि होनेसे श्वास और प्लीहाके स्थानमें विद्रधि होनेसे श्वासोच्छ्वासका अवरोध, वृक्कदेशमें विद्रधि होनेसे पार्श्व, पृष्ठ और कटिप्रदेश स्तब्ध होजाता है। नाभिमें विद्रधि होनेसे हिक्कारोग उत्पन्न होता है। कुक्षिमें विद्रधि होनेसे कोख, पसवाड़े और स्कंधप्रदेशोंमें शूल होता है। वंक्षणमें विद्रधि होनेसे ऊरुदेशमें अवसन्नता होती है। बस्तिमें विद्रधि होनेसे मूत्रका कठिनतासे उतरना और विष्ठामें दुर्गन्ध होती है। इत्यादि वैशेषिकलक्षणोंके द्वारा वर्तमान आयुर्वेदीय चिकित्सक स्थानीय अथवा यांत्रिकरोगोंके निर्णय करनेमें कदापि असमर्थ नहीं हो सकते। किन्तु यहां यह अवश्य स्वीकार करना होगा कि, यांत्रिक परीक्षाके द्वारा यह समस्त रोग और भी स्पष्टरूपसे विदित हो जाते हैं।

शरत्कालमें जब पित्तज्वर कुपित होता है उसमें टेम्परेचर अर्थात् शरीरकी गर्मी अत्यन्त अधिक १०३. १०४ डिग्री तक हो जाती है, जीभ पीली पड़ जाती है, आहारमें एक साथ अनिच्छा होजाती है, तृषा, प्रलाप और हल्दीके समान पतले दस्त होने लगते हैं। डॉक्टर लोग ऐसे रोगीको देखकर लक्षणोंके बाहुल्यसे अतिशय भयभीत होजाते हैं और तत्काल उसको रेमिटेंटफीवर मान लेते हैं। उस समय

रोगीकी तात्कालिक अवस्थाको देखकर केवल लक्षणदर्शी डॉक्टर भ्रममें पड़ जाते हैं। परन्तु वैद्य महाशय ऐसे रोगीको देखकर तत्काल पित्तके प्रकोपका समय समझकर अनायास पित्तज्वर निश्चय करते हैं। शरत्कालमें पित्तज्वर प्राकृत होता है अतएव वह उससे कुछ भी विचलित नहीं होते क्योंकि "प्राकृतः सुखसाध्यस्तु वसन्तशरदुद्भवः" अर्थात्—वसन्त अथवा शरत्कालमें प्राकृतज्वर सुखसाध्य होता है। अब प्रसंगवश प्राकृतज्वरके लक्षण यहां लिखते हैं:—

" वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात "।

अर्थात् वर्षाकालमें वातज्वर, शरत्कालमें पित्तज्वर और वसन्तऋतुमें कफज ज्वर प्राकृत होते हैं। अतएव जब शरत्कालमें पित्तज्वर कुपित होता है तब वह चाहे कितना ही भयंकर आकार क्यों न धारण करे किन्तु गन्धर्वनगरके समान शीघ्र ही नष्ट होजाता है। इस विषयमें चरक किस प्रकार अपना वैज्ञानिक मत प्रकट करते हैं, यहां उसे उद्धृत करते हैं:—

" ज्वरे तुल्यर्तुदोषत्वं प्रमेहे तुल्यदूष्यता।
रक्तगुल्मे पुराणत्वं सुखसाध्यस्य लक्षणम् " ॥

अर्थात् ज्वरमें यदि दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता हो, प्रमेहमें दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता हो और रक्तगुल्म यदि पुरातन होजाय तो उपर्युक्त ज्वर, प्रमेह और रक्तगुल्म यह तीनों सुखसाध्य होते हैं। किन्तु अन्यान्य रोग दोषोंके साथ ऋतुकी तुल्यता होनेसे दोषोंके साथ दूष्यकी तुल्यता होनेसे अथवा पुरातन होजानेसे अत्यन्त कष्टसाध्य होजाते हैं। यहां ऋतुके साथ दोषोंकी तुल्यता क्या है उसको संक्षेपरूपसे लिखते हैं। शीतकालमें सूर्य्यकी किरणोंकी मृदुता, दिनकी अल्पता, रात्रिके समयकी वृद्धि और चन्द्रमाकी किरणोंकी प्रबलता आदिके होनेसे उत्पन्न हुए शीतके प्रभावसे मनुष्योंके शरीरमें कफ संचित होता है फिर पौषके महीनेसे सूर्य्यके उत्तरायण होनेसे सूर्य्यकी किरणोंके द्वारा मनुष्योंके शरीरमें संचित हुआ कफ क्रमसे द्रवीभूत होकर वसंतऋतुमें कुपित होता है इस कारण वसन्तऋतुको कफका समय निश्चय किया है। अतएव कफदोषके साथ वसन्तऋतुकी तुल्यता होनेसे वसन्तकालोत्पन्न कफज्वर प्राकृत है। प्राकृतज्वर चाहे कितना ही भयंकर रूप क्यों न धारण करे किन्तु वह सुखसाध्य ही होता है। इसप्रकार वर्षाऋतुके शीतसे अभ्यस्त मनुष्योंका शरीर शरद्कालमें हठात् सूर्य्यकी किरणोंसे संतापित होजाता है।

वर्षामें संचित हुआ पित्त शरत्कालमें प्रकुपित होता है इसकारण शरत्काल पित्तका समय है। अतएव पित्तदोषके साथ शरदृतुकी तुल्यता होनेसे शरत्कालमें पित्तज्वर प्राकृत है। इसलिये इसकी चाहे कितनी ही भयंकर आकृति क्यों न हो किन्तु प्रकृत आयुर्वेदीय चिकित्सकगण उसको देखकर किंचित् मात्र भी भयभीत नहीं होते। यह रोग अन्य ऋतुओंमें उत्पन्न होनेसे वैकृत और अत्यन्त दुःसाध्य होता है।

उक्त साधारण रोगोंमें डॉक्टरोंके भयभीत होजानेका कारण केवल वात पित्त और कफकी अनभिज्ञता प्रतीत होती है। डॉक्टर महोदय मूत्रमें शर्करा (चीनी) को देखते ही अत्यन्त चमत्कृत हो जाते हैं तथा रोगको अत्यन्त गहन बताने लगते हैं। किन्तु वैद्य महाशय शर्कराको देखकर कदापि आकुलित नहीं होते। कारण कि—वह अच्छे प्रकारसे जानते हैं कि—कफजनित दश प्रकारके प्रमेहोंमें शर्करा प्रमेह भी होता है सो अत्यन्त सुखसाध्य है।

इस समय पश्चिमीय अस्त्रचिकित्साकी इतनी उन्नति देखकर अनेक भारतवासी कहते हैं कि—यूरोपीय शस्त्रचिकित्सा सम्पूर्ण चिकित्साओंकी अपेक्षा अधिक फलप्रद एवं सर्वोत्कृष्ट चिकित्सा है। किन्तु चरक, सुश्रुत प्रभृति आयुर्वेदीय ग्रंथोंके पढनेसे उनका यह भ्रम सहजमें ही दूर हो सकता है। इस देशमें भी कभी आर्य्यअस्त्रचिकित्साने विशेष उन्नति की थी। सुश्रुतके मतसे सम्पूर्ण अस्त्रचिकित्साओंकी अपेक्षा आयुर्वेदीय अस्त्रचिकित्सा अतिशय श्रेष्ठ समझी जाती है।

पूर्वकालमें अस्त्रचिकित्साने इतनी उन्नति की थी कि जिसकी रामायणादि पुराणोंमें अभीतक कथा सुनाई पड़ती है।

पूर्वकालमें अस्त्र, खड्ग, गदा, मुष्टि और प्रस्तरादिके द्वारा युद्ध होता था। एक योद्धा क्रमसे आठ दश दिनपर्यन्त युद्ध करता रहता था। उस समय धनुषके द्वारा छोड़े हुए बाण सम्पूर्ण शरीरमें विधजाते थे। शस्त्राघातसे शरीरमें अनेक प्रकारके क्षत होजाते थे एवम् अस्थि चूर्णित, भग्न और स्फीत होकर घोर पीड़ा उत्पन्न होजाती थी। उस समय हमारे पूर्वचिकित्सक शल्योद्धार, व्रणरोपण, व्रणशोधन, भग्नसंधानादि चिकित्साओंके द्वारा तत्काल व्रणकी पीड़ाका शमन कर देते थे। यहाँतक कि दूसरे दिन ही योद्धा लोग फिर स्वस्थ और सबल शरीरसे संग्राम करनेमें तत्पर होजाते थे।

इस प्रकार अनेक प्रकारकी घटनाओंको देखनेसे स्पष्टरूपसे विदित होता है कि प्राचीन समयमें इस देशमें अस्त्रचिकित्साने अत्यन्त उन्नति की थी। रामायणमें लिखा है कि—जब रावणने लक्ष्मणके हृदयमें शक्ति(शेल)का प्रहार किया था उस समय लक्ष्मणके वक्षस्थलमें क्षत और अस्थि भग्न होकर रुधिरका वमन होने लगा था। तब सुषेण वैद्यने विशल्यकरणी, अस्थिसंधानकारिणी आदि कई एक औषधियोंके द्वारा तत्काल रुधिरको बंद करके अस्थिसंधान और व्रणरोपण किया करी थी। यह रीति आज तक भी हमारे देशमें प्रचलित है। रुधिरका वमन या रुधिरका स्राव होनेपर विशल्यकरणी व्यवहार की जाती है और आघातजनित क्षतरोगमें अस्थिसंहारिणी व्यवहृत होती है।

अब आयुर्वेदीय अस्त्रचिकित्सा किस क्रमसे अवनतिको प्राप्त हुई सो कहते हैं। पहले इस देशके समस्त ऋषि, मुनि, महात्मा, योगी, बडे बडे विद्वान्, पंडित, वैद्य और सर्वसाधारण मनुष्योंको देशी लता वृक्ष आदि वनौषधियोंके प्रत्यक्ष और आश्चर्यजनक गुण ज्ञात थे। अतएव वे अत्यन्त भयंकर क्षत और अस्थिभग्नादि रोगोंमें आश्चर्य और प्रत्यक्षफलप्रद साधारण लतावृक्षादि वनौषधियोंका प्रयोग करके सहजमें ही बड़े २ जटिल रोगोंको दूर कर देते थे। केवल अस्त्रचिकित्साके लिये कभी किसी भारतवासीको अन्य वैद्यका आह्वान नहीं करना पडता था।

इस प्रकार जब साधारण वनौषधियोंके द्वारा विना अस्त्रचिकित्साके ही बडे २ भयंकर व्रणादि रोग सहजमें आरोग्य होने लगे तब अस्त्रचिकित्सासे भारतवासियोंको अश्रद्धा और भय उत्पन्न होने लगा। उससे यहांतक अश्रद्धा हुई कि, वैद्यमहाशय भी क्रम २ से अस्त्रचिकित्साको बिलकुल भूल गये और अस्त्रशिक्षाके पठन पाठनका सर्वथा त्याग कर दिया। इस प्रकार पूर्वोक्त कारणोंसे देशी अस्त्रचिकित्साकी इतनी अवनति होगयी। अभी कुछ काल पहले इस देशमें बडे २ वैद्य विद्यमान थे. वह अनेक दुस्तर और भयंकर, क्षतादि रोगोंको एकमात्र साधारण वनौषधियोंके द्वारा आराम कर देते थे। किन्तु समयके परिवर्त्तनमें उक्त वैद्योंकी संख्या क्रमक्रमसे अल्प होती गई। एवं देशी औषधियोंके ऊपरसे उच्चश्रेणीके लोगोंका विश्वास और श्रद्धा उठती गई। सर्वत्र डॉक्टरी चिकित्साका प्रचार हो गया इससे प्रायः प्रत्यक्षफलप्रद समस्त देशी औषधियाँ छिप गईं। आजकल डॉक्टर लोग जिन बड़े २ व्रणोंको विना अस्त्रचिकित्साके द्वारा आराम नहीं कर सकते. उन व्रणोंको पहिले वैद्यलोग साधारण औषधियोंसे आरोग्य कर देते थे। अबतक भी कहीं २ साधारण आयुर्वेदीय द्रव्योंका अतुल प्रभाव देखा जाता है। पश्चिमीय चिकित्सापद्धतिके अनुसार प्रायः सब प्रकारके व्रण मुख होजानेपर विना अस्त्रचिकित्साके कदापि आरोग्य नहीं होसकते। परन्तु आयुर्वेदीय वैद्य सब प्रकारके व्रणोंमें मुख होजानेपर या बिना मुख हुए ही केवल सामान्य प्रलेपादिकी औषधियोंसे आरोग्य कर देते थे।

भारतवर्षमें नाना जातिके लता वृक्ष विद्यमान हैं। वह केवल प्रकृतिकी शोभा बढानेके लिये ही नहीं हैं बल्कि अनन्तगुणसम्पन्न दिव्य वनौषधियाँ हैं। पहले इन ही वनौषधियोंके प्रभावसे भारतवासी सब प्रकारके रोगोंसे वंचित रहकर स्वस्थ शरीरसे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते थे। आजकल इनही वनौषधियोंकी आलोचनाके अभावसे भारतवासी चिररोगी, कायर और दीन होरहे हैं। किन्तु जो सर्वदा सत्यके ऊपर स्थित हैं उनकी बार बार अवनति होनेपर भी अन्तमें अवश्य जय होती है। जगत्के

इसी नियमानुसार अब फिर आयुर्वेदकी उन्नतिका समय परिवर्तित होता दीखता है। अवनतिके घोरान्धकारको समाप्त करके आयुर्वेदशास्त्र अब फिर धीरे २ उन्नतिकी अरुण किरणोंको प्रकीर्ण करने लगा है। भारतके प्रत्येक प्रांतमें आयुर्वेदशास्त्रकी यत्किंचित् चर्चा सुनाई देने लगी है। अनेक भारतवासी पश्चिमीय चिकित्साके चाकचक्यपर मोहित होनेपर भी एकवार फिर निराधार आर्य्यचिकित्साकी ओर झुकते दिखाई देते हैं।

वंगदेशवासी पंडितलोग आर्य्यचिकित्साको भारतकी मुख्य चिकित्सा बनानेका यत्न कर रहे हैं। उन्हींके सद् उद्योगसे भारतके अनेक स्थानोंमें आज अनेक आयुर्वेदीय विद्यालय, पाठशालायें, चिकित्सालय, शिक्षालय और औषधालय स्थापित हो रहे हैं। जिस प्रकार वंगदेशी विद्वन्मंडली आयुर्वेदका वास्तविक उद्धार करनेमें सर्वथा कटिबद्ध हो रही है उसी प्रकार दाक्षिण, महाराष्ट्र, गुजरात, मध्यप्रदेश और पश्चिमोत्तरदेशके मनुष्य भी आयुर्वेदके प्रचारके लिये धीरे धीरे अग्रसर होने लगे हैं। इस प्रकार क्रमशः हमारी भारतकी प्राचीन संस्कृत विद्या फिर उन्नतिके मार्गमें पद स्थापन करती दिखाई देती है। अनेक प्रकारके प्राचीन और अर्वाचीन संस्कृत ग्रंथ मूल और टीका समेत मुद्रित होते जाते हैं। एवं चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश, माधवनिदान, शार्ङ्गधर, चक्रदत्त और हारीतसंहिता आदि कितने ही आयुर्वेदीय ग्रंथ भी संस्कृत टीका और भाषाटीका समेत छपकर प्रकाशित हो रहे हैं।

यद्यपि आजतक उपर्युक्त चिकित्साशास्त्रसम्बन्धी चरक, सुश्रुतादि अनेक प्राचीन आर्षग्रन्थ विविध प्रकारसे अनेक स्थानोंमें छप चुके हैं और छपते जाते हैं किन्तु इनके द्वारा सर्वसाधारणको अधिक लाभ होता नहीं दीखता। कारण कि, चरक, सुश्रुतादि ग्रन्थ विषयोंके बाहुल्य और गहनतासे आजकलके अल्पबुद्धिवाले मनुष्योंको अधिक उपयोगी नहीं हो सकते। एवं भावप्रकाशादि अर्वाचीन ग्रंथ उक्त विषयोंकी संक्षिप्तता और अल्पता होनेके कारण सबको लाभकारी नहीं होसकते। अतएव इसी अभावको दूर करनेके लिये आयुर्वेदभण्डारके उज्ज्वलरत्नस्वरूप इस "वंगसेन" ग्रंथका प्रादुर्भाव हुआ है।

वैद्यकभण्डारमें वङ्गसेन बहुमूल्य महार्घरत्न है। इसकी चिकित्सापद्धति अन्य चिकित्साशास्त्रोंकी अपेक्षा अतिशय श्रेष्ठ है। जो विषय अन्य चिकित्साशास्त्रोंमें अपूर्ण हैं वे इसमें पूर्णरीतिसे वर्णन किये गये है। और, जो विषय अन्य ग्रंथोंमें अत्यन्त क्लिष्टतासे वर्णित हैं वे इसमें अत्यन्त सरल रीतिसे निरूपण किये गये हैं। ग्रंथकारने इसमें कितने ही नवीन रोगोंका निदान और चिकित्सा लिखी है जो कि आजकल इस देशमें अधिकतासे पाये जाते हैं। किंतु अन्य वैद्यकग्रंथोंमें उन रोगोंका कहीं नामतक भी नहीं लिखा है। ग्रंथकारने विशेषकरके इसमें प्राचीन आर्ष ग्रंथोंके क्रमसे अनुभूत सिद्धयोग कहे हैं।

जिस प्रकार इसकी चिकित्साका क्रम अतिशय श्रेष्ठ है उसी प्रकार रोगनिर्णय, वातपित्तादिदोषनिरूपण, रसरक्तादि सप्तधातुनिरूपण, वात, पित्त और कफके क्रमसे देश, काल एवं रुग्ण प्रकृतिका वर्णन, वसन्तादि षड्ऋतु, दिनचर्य्या, रात्रिचर्य्या, ऋतुचर्य्या, औषधियोंके गुण दोष, निघंटुखंड, कालज्ञान, अष्टविधपरीक्षा आदि अन्यान्य विषय भी अन्य ग्रंथोंकी अपेक्षा श्रेष्ठ कहे हैं। जो विषय अन्य ग्रंथोंमें आठ आठ दश २ श्लोकोंमें वर्णित हैं, वे इसमें केवल एक दो श्लोकोंमें अत्यन्त सुगम रीतिसे कहे हैं। इस ग्रंथके प्रयोगोंको अनेक ग्रंथकार अपने २ ग्रंथोंमें संग्रह करते हैं इससे भी इस ग्रंथकी उत्कृष्टता सिद्ध होती है। भिषक्शिरोमणि वङ्गसेनने ठीक आजकलके मनुष्योंकी प्रकृतिके अनुसार ही इसकी रचना की है। इस ग्रंथके प्रयोग चक्रदत्त, भैषज्यरत्नावली आदि अनेक ग्रंथोंमें पाये जाते हैं। आयुर्वेदीय विद्यालयोंमें यह ग्रंथ अत्यन्त आदरपूर्वक पढ़ाया जाता है।

इस ग्रंथके आधारसे जाना जाता है कि इसके बनानेवाले भिषग्वर वंगसेनका जन्म विक्रमकी ग्यारहवीं शताब्दीमें बंगालके कांतिकावास या कान्तिनगरमें गदाधर वैद्यके घर हुआ था। वंगसेनका समय चक्रपाणिदत्तसे पहले जान पड़ता है। क्योंकि इस ग्रंथके घृत तैलादि अनेक सिद्धप्रयोग चक्रपाणिदत्तने अपने ग्रंथमें संग्रह किये हैं।

"चक्रपाणिदत्त वीरभूमि देशवासी प्रसिद्ध रोध्रवल नामक दत्तकुलमें उत्पन्न नारायणदत्तका पुत्र और नरदत्तका शिष्य था और वह वैद्य भानुदत्तके अन्तरंगभावसे गौड़राज्यकी पाकशालाका अध्यक्ष हुआ था। इसका प्रादुर्भाव ७५० के लगभग जान पड़ता है।

कितने ही वैद्य कहते हैं कि वंगसेन वैद्य अबसे अनुमान५००सौ वर्ष पहले मुजफ्फरपुर जिलेके कांति नगरमें विद्यमान थे। हमारे प्रियवर मित्र वैद्यराज रामेश्वरानन्दजीने विशेष अनुसंधानके द्वारा निश्चय किय है कि वंगसेन अबसे ४०० वर्ष पहिले वंगालके पूर्व विभागके श्रीपुर राज्यमें उपस्थित थे। हमने भी, वंगसेनकी जीवनीके लिये बहुत प्रयत्न किया, किन्तु शीघ्रताके कारण ठीक ठीक उनकी जाति,कुल, समय आदिका पता मालूम नहीं होसका इसका हमे खेद है।

यद्यपि यह ग्रन्थ अबतक संस्कृतमूल दो तीन स्थानोंमें छप चुका है, किन्तु केवल मूल मात्र होनेके कारण सर्वसाधारणको उपयोगी नहीं होसकता ऐसा विचारकर सुप्रसिद्ध विद्वद्वर्य्य श्रीमदायुर्वेदोद्धारक कविराज लाला शालिग्रामजीने इस वंगसेनका अनुवाद करना प्रारम्भ किया, किंतु उसकी समाप्तिके पूर्व ही आप यक्ष्मारोगसे पीडित होगये। लालाजीने यक्ष्माके एक दो लक्षण प्रतीत होते ही आठ नौ महीने पहले ही मुझसे कह दिया था कि "अबकी बार मुझे, 'जराजनित शोष' हुआ है, अतएव मेरे शरीरका विश्वास मत करना और इस वङ्गसेनका अनुवाद पूर्ण कर देना तथा अन्यान्य भैषज्यभास्कर प्रभृति मेरे अपूर्ण ग्रंथोंकी पूर्त्ति कर देना"। मैंने उक्त कविराजकी आज्ञाको सर्वथा शिरोधार्य्य समझकर इसका अनुवाद पूर्ण किया और यथा अवकाश लालाजीके अन्यान्य ग्रन्थोंकी भी पूर्ति की जायगी।

लाला शालिग्रामजीका जन्म वैक्रमीय संवत् १८८८ आश्विन शुक्ल तृतीयाको मुरादाबादके सुप्रसिद्ध सेठ लाला आनन्दस्वरूपके घर हुआ। आपकी रुचि बालकपनसे ही विद्या और कला कौशलमें विशेष जान पडती थी। यद्यपि आपकी अवस्थाका बहुतसा पूर्वभाग बाल्यक्रीडामें ही व्यतीत हुआ था, परन्तु पीछे थोडे ही समयमें आपने सम्पूर्ण कार्योंमें अपूर्व दक्षता प्राप्त कर ली थी।

परिणाम यह हुआ कि आप थोडे ही समयमें अच्छे विद्वान् बन गये। आप बडे परोपकारी थे। केवल परोपकारकी दृष्टिसे आपने अपने जीवनमें बहुतेरे काम किये जिनका उल्लेख करनेके लिये यहां स्थान नहीं है।

लालाजीका अपूर्व धैर्य्य, अतुल साहस, असीम उद्योग और अद्भुत कलाकौशल आदि गुण थोडे समयमें ही सम्पूर्ण संसारमें विख्यात होगये। आप जिस प्रकार सत्यप्रतिज्ञ और धीरचरित थ, उसी प्रकार धर्मात्माओंमें अग्रगण्य और सज्जनोंमें माननीय समझे जाते थे। जो २ गुण लालाजीमें विद्यमान थे, वे गुण आजकलके बडे २ धीशक्तिसम्पन्न विद्वानोंमें भी नहीं देखे जाते। आप राजनीति, धर्म्मनीति और समाजनीतिके पूर्ण ज्ञाता एवं देश और कालके जाननेमें प्रसिद्ध पंडित थे। पूर्वअवस्थासे ही आपको नीति, धर्म्मशास्त्र, वैद्यक, ज्योतिष और साहित्यके संबधी ग्रंथोंको पढनेका विशेष अनुराग था। आपने अल्प समयमें कितने ही नाटक,उपन्यास, धर्म्मशास्त्र और वैद्यकके विविध ग्रन्थोंकी रचना की। आपके अबतक वैद्यक ग्रन्थोंमें से आयुर्वेदीय औषधिकोष, राजवल्लभनिघण्टु, शालिग्रामनिघण्टुभूषण, रसरत्नाकर, भावप्रकाश, धन्वंतरि, अर्कप्रकाश, द्रव्यगुण, वोपदेवशतक आदि ग्रन्थ छप चुके हैं। और शेष जो अपूर्ण ग्रन्थ हैं वे भी पूर्ण करके शीघ्र ही प्रकाशित किये जायँगे।

लालाजीके यद्यपि कोई पुत्र नहीं था परन्तु वे अपने दौहित्र भाई हरिशंकरको पुत्रसे भी अधिक प्रिय समझते थे, अतएव इनको वे सदैव अपने निकट रखते थे। हरिशंकरजीने भी उनके समीप रह कर उनके अनेक गुणोंका अनुकरण किया। संवत १९५४ में उन्होंने इस नगरमें एक आयुर्वेदोद्धारक नामक औषधालय स्थापन किया और उसका सम्पूर्ण स्वत्वाधिकार मुझे और भाई हरिशंकरको प्रदान किया। आजतक हम दोनों उस औषधालयको उसी क्रमसे चला रहे हैं। जिस प्रकार प्रातःकालके छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याके चार बजे से छः बजेतक लालाजी इस औषधालयमें नित्य उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंका विना मूल्य औषधि और

व्यवस्थादि प्रदान किया करते थे, उसी प्रकार हम दोनों प्रातः छः बजेसे दश बजेतक और सन्ध्याको चार बजेसे छः बजेतक औषधालयमें उपस्थित होकर समस्त अभ्यागत रोगियोंको विना मूल्य औषधि और व्यवस्थादि प्रदान करते हैं।

जब यह बंगसेन मुझे लालाजीने अनुवाद करनेके लिये दिया था, तब इस ग्रन्थको देखकर जितनी मुझे प्रसन्नता हुई थी उतना ही दुःख भी हुआ। कारण कि—यह मूलग्रन्थ इतना ही अशुद्ध था कि इसमें कहींर श्लोकका आशय भी अच्छे प्रकारसे समझमें नहीं आता था। यद्यपि मैंने इसको यथामति शुद्ध किया है तथापि इसमें अशुद्धियां अवश्य रह गई होंगी अतःसहृदय पाठक मुझे अल्पज्ञ समझकर क्षमा करेंगे औ पत्र-द्वारा सूचित करनेकी उदारता दिखायेंगे।

इसके अनुवाद करने तथा बंगसेनकी जीवनी आदिके खोज करनेमें श्रीयुत-वैद्यराज पण्डित दुर्गादत्तजी-प्रान्त, मुरादाबाद। श्रीयुत, वैद्यराज-भोलानाथजी शर्म्मा, लाहौर। श्रीयुत वैद्य-रामेश्वरानन्दजी, बम्बई। श्रीमान् पंडित मुकुन्दशास्त्री ओझा-प्रपन्नाहाटी, दर्भंगा आदि महानुभावोंसे विशेष सहायता मिली थी, अतः उक्त समस्त महानुभावोंका मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं।

मैंने जिनेंद्रदेवकी कृपासे और सम्पूर्ण वृद्धवैद्योंके अनुग्रहसे लालाशालिग्रामजीकी आज्ञानुसार इस ग्रंथका अनुवाद समाप्त किया है।

भवदीय-अनुगृहीत,
वैद्य-शंकरलाल हरिशंकर,
"आयुर्वेदोद्धारक-औषधालय,"-मुरादाबाद.



श्रीः ।

भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका ।



इति भाषाटीकासह वङ्गसेनस्थविषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीः।

अथ भाषाटीकासहितो वङ्गसेनः प्रारभ्यते ।

मङ्गलाचरणम् ।

नत्वा शारदपादपद्मयुगलं मत्वाऽऽगमानां चयं
गत्वा पारमशेषपूर्वभिषजां सद्ग्रन्थवारांनिधेः ।
श्रीमत्पण्डितवङ्गसेनरचितां तन्नामिकां संहितां
शालग्रामपदाभिध नकलितो व्याख्याति विद्वन्मुदे ॥ १ ॥

ग्रन्थारम्भः ।

ध्यात्वा गिरिशमपहाय मनःप्रपञ्चं
वृद्धाननुपास्य भिषजस्तदुदाहृतीश्च ।
श्रीवङ्गसेनभिषजा खलु वैद्यवृद्धसिद्ध-
प्रयोगनिवहो बहु लिख्यतेऽस्मिन् ॥१॥

मैं श्रीवङ्गसेन वैद्य, प्रथम श्रीमहादेवजीका ध्यान कर और नानाप्रपञ्चपूर्ण धन्धोंको छोड़कर एवं वृद्ध वैद्योंकी उपासना कर और उनकी उक्तियोंको विचार कर वृद्ध वैद्योंके सिद्ध किये हुए प्रयोगोंको इस ग्रन्थमें लिखता हूँ ॥ १ ॥

सज्जनप्रार्थना ।

नत्वा शिवं प्रथमतः प्रणिपत्य चण्डीं
वाग्देवतां तदनु तातपदं गुरुं च ।
संगृह्यते किमपि यत्सुजनैस्तदत्र चेतो
विधातुमुचितं तदनुग्रहेण ॥ २ ॥

प्रथम शिव, पार्वती और सरस्वती देवीकी वन्दना कर पश्चात् पिता और गुरुके चरणकमलोंको प्रणाम कर उनके अनुग्रहसे मैं इस ग्रन्थमें जो कुछ संग्रह करता हूँ उसको सज्जन कृपा कर ध्यान देकर पढ़ें ॥ २ ॥

दुर्जनप्रार्थना ।

हेतुर्जनैः परगुणेषु भवादृशानां द्वेषः
किमेष सहजो गुणितापहारी याच्ञापि
दैन्यफलभिफला तदानीं तादृग्वि-
धस्य मिथुनस्य विमोचनाय ॥ ३ ॥

जब दुष्टोंके गुणोंमें और सतोंमें मनुष्योंका हरनेवाला स्वाभाविक द्वेष है तब याचनामें दीनताके ही मलाप, फलको प्राप्त करता इस प्रकारके मिथुन (द्वेष) और याच्ञाके लिये क्या यह जन अर्थात् ग्रन्थकार समर्थ हो सकता है अर्थात् नहीं हो सकता ॥ ३ ॥

कान्तिकावासनिर्जातश्रीगदाधरसू-
नुना । क्रियते वङ्गसेनेन चिकित्सा-
सारसंग्रहः ॥ ४ ॥

'कान्तिकावास' नगरमें उत्पन्न श्रीगदाधरका पुत्र मैं वङ्गसेन, इस चिकित्सासारसंग्रहको बनाता है ॥ ४ ॥

हृदि तिष्ठति यस्यैष चिकित्सातत्त्व-
संग्रहः । सनिदानचिकित्सायां न
दरिद्रात्यसौ भिषक् ॥ ५ ॥

जिस वैद्यके हृदयमें यह चिकित्सातत्त्वसंग्रह स्थित रहता है वह वैद्य निदान और चिकित्साके विषयमें कदापि दरिद्रताको प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह निदान सहित चिकित्साके जाननेमें निपुण हो जाता है, उसको किसी और शास्त्रकी निदान और चिकित्सामें आवश्यकता नहीं रहती; यही पर्याप्त है ॥ ५ ॥

धर्म्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमु-
त्तमम् । रोगास्तस्यापहर्त्तारः श्रेयसो
जीवितस्य च ॥ ६ ॥

(१) 'तत इहतोऽथ' इति पाठान्तरम् । (२) इत्यसांसारिकः पाठ इति केचित् ।

धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष का उत्तम मूल (जड़) आरोग्य है और रोग उसके, कल्याणके और जीवन के हरने वाले हैं ॥ ६ ॥

तेषां प्रशमनोपायमतिदुर्वाररंहसम् । ब्रूमहे नातिविस्तीर्णं सनिदानं चिकित्सितम् ॥ ७ ॥

उन अत्यन्त दुर्निवार्य्य वेगवाले रोगोंके निदान और चिकित्सा सहित शमन करनेवाले उपायोंको अनावश्यक विस्तार रहित पूर्ण रूपसे कहते हैं ॥ ७ ॥

निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा । सम्प्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥ ८ ॥

निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति यह रोग जाननेके पांच कारण हैं अर्थात् इनके द्वारा रोगका ज्ञान होता है ॥ ८ ॥

येनाहारविहारेण रोगाणामुद्भवो भवेत् । क्षयो वृद्धिश्च दोषाणां निदानं हि तदुच्यते ॥ ९ ॥

जिस आहार और विहार के द्वारा रोगोंकी उत्पत्ति तथा वातादि दोषोंका क्षय और वृद्धि होती है उसको निदान कहते हैं ॥ ९ ॥

निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः। निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥ १० ॥ उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः । लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥ ११ ॥ तदेव व्यक्ततां यातं रूपमित्यभिधीयते। संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥ १२ ॥

जिस लक्षणसे उत्पन्न होनेवाले रोगका ज्ञान हो उसको पूर्वरूप कहते हैं जैसे कि, ज्वरके पूर्वमें श्रम आदिका होना ज्वरका पूर्वरूप है ।

अब निदानके पर्याय वाचक शब्दोंको कहते हैं-- निमित्त, हेतु, आयतन, प्रत्यय, उत्थान और कारण ये निदानके पर्यायवाचक शब्द शास्त्र व्यवहारके अर्थ मुनीश्वरोंने कहे हैं। इनके कहनेका कारण यह है कि व्यवहारके लिये अर्थात् शास्त्रमें इन छहों शब्दोंमेंसे कोई शब्द आवे तो उसको निदानवाचक ही जाने। जिस जम्भाई आदिसे उत्पन्न होनेवाली व्याधिका ज्ञान हो उनको पूर्वरूप कहते हैं। फिर वह व्याधि दोष (वात पित्त कफ) से बहुधा अप्रगट हो। शंका-[illegible] ादिक दोषोंसे अप्रगट होगी तो व्याधिका [illegible] होना असम्भव है क्योंकि कारण तो वातादिक दोष हैं। जब दोष ही नहीं तो रोग कैसे प्रगट हो सकते हैं । उत्तर--इस पदका यह अर्थ है कि दोष (वात पित्त कफ) का व्याधिके अल्प होनेसे अप्रगट रूप होना अर्थात् थोडा २ होना, अतएव तत्तत् ज्वरादिव्याधिका अपने अपने अप्रगट लक्षण। पूर्वरूप वैसे वैसे ही होते हैं । अब कहते हैं कि पूर्वरूप दो प्रकारका है, एक सामान्य दूसरा विशिष्ट। सामान्यप्राग्रूप (पूर्वरूप) उसे कहते हैं जैसे दोष (वात पित्त कफ) से दूषित धातु उसके बिगडनेसे प्रगट होनेवाले ज्वरादि व्याधिमात्रहीकी प्रतीति हो और वात आदि दोषोंके चिह्न न मालूम हों जैसे "श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वमिति" अर्थात् ज्वरमें श्रम हो, मनका न लगना, देहका विवर्ण इत्यादि लक्षण। और जिसमें होनहार रोगारम्भक दोष उनके चिह्न उसके एक अंशकी प्रतीति हो उसको विशिष्ट प्राग्रूप कहते हैं, जैसे " जृंभात्यर्थं समीरणात् " अर्थात् जंभाईका आना केवल वातके दोषसे ही है। इसमें होनहार रोग कौन ज्वर, उसका आरम्भक दोष कौन वात, उस वातका एक अंश कौन जंभाई, ऐसा और भी जानने चाहिये । इस विशिष्ट पूर्वरूपमें जंभाई आदि रूप देखकर कदाचित् पूर्वरूपको रूप न समझना चाहिये । क्योंकि यह तो केवल व्याधिके आरम्भक दोषमात्रका सूक्ष्म चिह्न है । इस बातको दृष्टांत देकर समझाते हैं--दृष्टान्त । जैसे तृणके समूहको छोटी अग्निकी चिनगारी गिरनेसे धूम (धुआँ) मात्र प्रकट देखकर हाथ, वस्त्र आदिके मारनेसे ही शांति करे सकते हैं, परन्तु जब अग्नि एक साथ जोरसे प्रज्वलित हो गई तब शान्त नहीं होसके ऐसे ही विशिष्ट पूर्वरूपके अल्प होनेसे चिकित्सा करनेसे शांति कर सकते हैं, परन्तु जब रूप होगया तब उसका उपाय नहीं हो सकता है इसीसे पूर्वरूप और रूपमें भेद है । अब कहते हैं पूर्वरूप और रूप इन दोनोंमें कोई शारीरिक अर्थात् शरीरसे सम्बन्ध रखते हैं और कोई मानसिक

त् मनसे सम्बन्ध रखते हैं । शारीरिक जैसे में मुखका विरस होना, देह भारी, नेत्रोंसे गिरना इत्यादिक और मानसिक जैसे मनका जगह न लगना और अपने हितकारक वचनोंमे ति न होना तथा खट्टे चरपरे पदार्थ पर मन ना। जब पूर्वोक्त प्राग्रूप प्रगट होजाय तब उसको कहते हैं। और संस्थान, व्यञ्जन, लिंग, क्षण, चिह्न और आकृति ये छ शब्द रूपके पर्याय-चक हैं ॥ १० ॥ ११ ॥ १२ ॥

उपशयः।

हेतुव्याधिविपर्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् । औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥ १३ ॥ विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतम् । विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्यमिति स्मृतः ॥ १४ ॥

अब उपशयके लक्षणको कहते हैं:-हेतुविपरीत, व्याधिविपरीत, हेतुव्याधिविपरीत, हेतुविपर्यस्ता-र्थकारी, व्याधिविपर्यस्तार्थकारी, हेतुव्याधिवि-पर्यस्तार्थकारी ऐसे जो औषध अन्न (पथ्य) विहार (आचरण) इनका सेवन सुखकारक जानना उसको व्याधिका उपशय कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि, रोगी और रोगका हेतु इनको सुखकारक जो औषध पथ्य आचरणरूप प्रयोग उसको उपशय कहते हैं और व्याधिसात्म्य ये पर्यायवाचक नाम उसी उपशयके हैं। सुखकारकके कहनेसे यह प्रयोजन है कि दाह और प्यासयुक्त नवीन ज्वरमें शीतलजलका पीना व्याधिका बढानेवाला है इससे शीतल जल सुखकर्ता न हुआ अतएव शीतल जलको उपशय न समझना चाहिये परंतु दाहयुक्त प्यासमें शीतल जल उपशय माना जायगा क्योंकि सुखकारक है ॥

(अब क्रमसे उदाहरण लिखते हैं।)

हेतुविपरीत औषध-जैसे शीतकफज्वरमें सोंठ, तो इसमें प्रथम समझना चाहिये कि, यहां हेतु कौन है कि, सर्दी उसका शीतल धर्म है तो अब शीत कफ यह कब शान्त हो जब कि सर्दी और कफसे विपरीत औषध मिले ऐसी औषध सुंठी सर्दी और कफ दोनोंको शान्त करती है सो शीतकफज्वरमें हेतुवि-परीत औषध सोंठ हुई। ऐसे ही हेतुविपरीत अन्न जैसे श्रम और वातसे प्रगट ज्वरोंमें मांसका रस और चावल। इसमें हेतु कौन श्रम और वात, ये कब शान्त हों, जब श्रम और वात-हरणकर्त्ता पथ्य मिले, ऐसा पथ्य कौन है मांसरस और चावलोंका भात, ये श्रम और वातके विपरीत हैं अर्थात् नाशक हैं। ऐसे ही हेतुविपरीत विहार कहिये आचरण कौन जैसे दिनके सोनेसे प्रकट कफपर रातमें जागना, यहां हेतु कौन हुआ कि दिनका सोना, उससे प्रगट दोष कौन कफ है, यह कफ कब शान्त हो जब जिस हेतुसे प्रगट हुआ उस हेतुसे विपरीत आचरण किया जाय, तो दिनके सोनेपर उलटा आचरण कौन है रातमें जागना, तो यह हेतुविपरीत आचरण हुआ । इसी प्रकार और उदाहरण व्याधिविपरीत आदिके बुद्धिमान मनुष्य स्वयम् समझ लेवें । जो उपशयके लक्षण कहे हैं उससे विपरीत लक्षण अनु-पशयके हैं और व्याधिका असात्म्य अर्थात् अस-मान नाम उसी अनुपशयका पर्यायवाचक शब्द है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सम्प्राप्ति।

यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता। निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्जातिरागतिः ॥ १५ ॥

दोष कहिये वात पित्त कफ इनका दुष्ट होना नाम कुपित होना अनेक प्रकारका है अर्थात् स्वका-रण या दूसरेके कारण करके ऐसे कुपित दोष अपने स्थानको छोडकर देहमें ऊपर नीचे तिरछे विचरते हैं उस विचरनेसे जो रोग प्रकट हो उसको सम्प्राप्ति कहते हैं और जाति तथा आगति ये दोनों पर्याय-वाचक नाम उसी सम्प्राप्तिके हैं. तात्पर्यार्थ यह है कि मनुष्यके देहमें वात पित्त कफ ये सम्पूर्ण दोष बढकर जैसे रोगको प्रगट करैं वैसेही उसको सम्प्राप्ति कहते हैं । उदाहरण-जैसे कुपित दोषोंका आमाश-यमें प्रवेश होनेसे और उस स्थानमें इतस्ततो गमन करनेसे और पक्वाशयमें रहनेवाली अग्निको बाहर निकालनेसे तथा उसी जठर अग्निसे सर्व देहके तप्त होनेसे यह ज्वर है, ऐसा जो निश्चय किया जाता है उसीको संप्राप्ति कहते हैं, ऐसे ही अतिसारादि रोगोंकी संप्राप्ति जाननी चाहिये ॥ १५ ॥

संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः। सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥ १६ ॥

अब संप्राप्तिके भेद कहते हैं, सा कहिये सो संख्यादि विशेषण करके पांच प्रकारकी है जैसे १ संख्या २ विकल्प ३ प्राधान्य ४ बल ५ काल. जैसे इसी ग्रंथमें आगे आठ प्रकारका ज्वर, पांच प्रकारकी खाँसी कही जायगी अर्थात् रोगोंकी गणनाको ही संख्यारूप सम्प्राप्ति कहते हैं ॥ १६ ॥

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना । स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यां व्याधेः प्राधान्यमादिशेत्॥ १७॥

मिले हुए दोष कहिये वात पित्त कफ इनके अंशांशका अनुमान करना उसको विकल्परूप सम्प्राप्ति कहते हैं, जैसे धूएँके निकलनेसे यह पर्वत अग्निवाला है, ऐसे ही इस रोगीके देहमें वात का अंश विशेष है काहेसे कि वातके अंश विशेष मिलनेसे इसी अनुमानको विकल्पसंप्राप्ति कहते हैं। उदाहरण—जैसे रूखी शीतल हलकी और फलानेवाली इत्यादि गुणयुक्त जो पवन उसका रूक्ष आदि गुणयुक्त कसैला रस वातको सर्वांश करके बढानेवाला है । ऐसे ही कटुरस सर्व भाव करके पित्तका बढानेवाला है अर्थात् कटु, उष्ण, तीक्ष्णत्व करके हीग पित्तको बढाने वाली है । ऐसे ही मधुररस जैसे भैंसका दूध यह सर्व भाव करके कफ बढाने वाला है इत्यादि । इसमें "दोषाणाम्" जो बहुवचन है सो दोषोंके पृथक् पृथक् ग्रहणके वास्ते है और "समवेतानाम्" यह पद जो है सो द्वंद्वज और सन्निपातके ग्रहणनिमित्त धरा है । व्याधिकी स्वतन्त्रता और परतंत्रता करके प्रधानता और अप्रधानता कही है, जैसे स्वतंत्र ज्वरको प्रधानता है और ज्वराधीन श्वास आदि रोगोंको अप्रधानता है । अर्थात् व्याधिकी स्वतंत्रतासे प्रधानता और परतंत्रतासे अप्रधानता जाननी चाहिये ॥ १७ ॥

हेत्वादिकात्स्न्यावयवैर्बलाबलविशेषणम् ॥ १८ ॥

हेतु आदि शब्दोंसे हेतु, पूर्वरूप और रूप इन के सर्व अवयव (लक्षण) मिलनेसे व्याधिको बलवान् जानना और थोडे लक्षण मिलनेसे निर्बल जानना जस रोगके प्रति जो निदान कहा है यह निदान सम्पूर्ण रोगोंको उत्पन्न करनेवाला है या एकदेश, ऐसे ही पूर्वरूप भी समस्त अवयवों करके व्याधिका प्रकाशक है या एकदेशसे इत्यादि ॥१८॥

नक्तंदिनर्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथाबलम् ॥ १९ ॥

नक्त (रात्रि) दिन (दिवस) ऋतु (वसन्तादि) भुक्त (आहार) इनका अंश कहिये एकदेश उसको यथादोष (वात, पित्त, कफ) के अनुसार व्याधिका काल अर्थात् रोगके घटने बढनेके हेतुका समय जाने। उदाहरण दिखाते हैं। जैसे रात्रिके तीन भाग करे प्रथम, मध्य और अन्त्य तो रात्रिका प्रथमभाग कफका, मध्यभाग पित्त का, अन्त्यभाग वातका है । ऐसे ही दिनके भी तीन भाग करे तो पूर्वाह्न कफका, मध्याह्न पित्तका अपराह्न वातका है । ऐसे ही ऋतु, जैसे वसंतऋतु में कफ, शरदृतुमें पित्त और वर्षामें वात कुपित होता है । ऐसे ही भोजनका, जैसे भोजन करनेके समय कफका काल और अन्नके पचनेके समय पित्तका काल और जब भले प्रकार परिपक्व होगया तब वातका काल, इसके जाननेसे यह प्रयोजन है कि, जिस दोष (वात, पित्त, कफ) का जो काल कहा है उसका उसी २ काल में जान लेना कठिन मालूम नहीं होता ॥ १९ ॥

इति प्रोक्तो निदानार्थस्तद्व्यासेनोपदिश्यते ॥ २० ॥

इति कहिये यह संक्षिप्त प्रकारसे जो निदानार्थ कहा उसे विस्तारपूर्वक प्रतिरोगके निदान पूर्वरूपादि करके कहेंगे ॥ २० ।

सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः । तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् ॥ २१ ॥

अब पूर्व कहे निदान के दो भेद कौन सन्निकृष्ट और विप्रकृष्ट उसमें सन्निकृष्ट कौन वातादिक समीपके कारण करके सर्व रोगोंका कारण है सो कहते हैं "सर्वेषामिति" कुपित हुए जो मल (वात, पित्त, कफ) ये सम्पूर्ण रोगोंके कारण होते हैं और उन वात, पित्त, कफ दोषोंके कोपका कारण अनेक प्रकारका अपथ्यसेवन करना ही है ॥ २१ ॥

निदानार्थकरो रोगो रोगस्याप्युपजायते। तद्यथा ज्वरसन्तापाद्रक्तपित्तमुदीर्य्यते ॥ रक्तपित्ताज्ज्वरस्ताभ्यां श्वासश्चाप्युपजायते । प्लीहाभिवृद्ध्या जठरं जठराच्छोफ एव च ॥ अर्शोभ्यो जाठरं दुःखं गुल्मश्चाप्युपजायते ॥ प्रतिश्यायाद्भवेत्कासः कासात्सञ्जायते क्षयः। क्षयो रोगस्य हेतुत्वे शोषस्याप्युपजायते ॥ २२ ॥

कोई प्रश्न करे कि जो, पूर्व कह आये हैं यह ही निदान है अथवा इसके व्यातीरिक्त और इसलिये कहते हैं रोगका रोग भी निदान होता है अर्थात् जो निदानसे कार्य होता है वह ही रोगसे भी होता है, इसवास्ते दृष्टांत देकर कहते हैं "तद्यथेति" जैसे ज्वरसंतापसे रक्तपित्त प्रगट होता है और रक्तपित्तसे ज्वर और रक्तपित्त व ज्वरसे श्वास प्रगट होता है और प्लीहाके वढनेसे जैसे उदररोग और उदररोगसे सूजन, ववासीरसे जस उदररोग और गुल्म (गोला) रोग, दिनमें सोने आदिकोंसे जुकाम होता है और जुकामसे खांसी तथा खांसीसे ओज-प्रभृति धातुओंका क्षय होता है। यह क्षयरोग (राजयक्ष्मा) संपूर्ण रोगोंमें राजा है और शोषको भी प्रगट करता है ॥ २२ ॥

ते पूर्वं केवला रोगाः पश्चाद्धेत्वर्थकारिणः । उभयार्थकरा दृष्टास्तथैव कार्यकारिणः ॥ २३ ॥

वे रोग प्रथम स्वतंत्र होते हैं और पीछे जब बल मिल गया तो वे ही हेत्वर्थकारी अर्थात् रोगके उत्पन्न करनेवाले होते हैं, जैसे ज्वरसे रक्तपित्त होता है। इस प्रकार रोग उभयार्थकारी अर्थात् कार्य—कारण रूप हैं,सारांश यह कि स्वतंत्र रोग होनेसे कार्यरूप हैं और अन्य रोगका कारण होनेसे कारणरूप हैं॥२३॥

कश्चिद्धि रोगो रोगस्य हेतुर्भूत्वा निवर्त्तते । न प्रशाम्यति चाप्यन्यो हेतुत्वं कुरुतेऽपि च ॥ एवं कृच्छ्रतमो नृणां दृश्यते व्याधिसंकरः ॥ २४ ॥

१ 'शोफस्य' इति पाठान्तरम्।

अब उसी रोग उत्पन्न करनेवाली व्याधि की विचित्रता दिखाते हैं, जैसे कोई एक रोग दूसरे का कारण हो अर्थात् दूसरे रोगको प्रगट कर आप शांत हो जाता है। जैसे ज्वरके संतापसे रक्तपित्त होता है उस समय ज्वर दूर हो जाय और रक्तपित्त रह जावे। और कोई रोग दूसरे रोगको प्रगट कर आप जैसाका तैसा बना रहता है, जैसे ववासीर नहीं जाय और गुल्म तथा उदररोग पैदा होते हैं। इस प्रकार मनुष्योंके घोर क्लेशदायक मिले हुए रोग देखनेमें आते हैं । विशेष करके चिकित्सा विरुद्ध होनेसे ये रोग कृच्छ्रतम होते हैं ॥२४॥

तस्माद्यत्नेन सद्वैद्यैरिच्छद्भिः सिद्धिमुत्तमाम् । ज्ञातव्यो वक्ष्यते योऽयं ज्वरादीनां विनिश्चयः॥ २५ ॥

अब कहे हुए निदानादिपंचकद्वारा रोगनिवृत्ति रूप सिद्धिकी इच्छा करके अवश्य जानने योग्यको कहते हैं "तस्मात्" इति इसी कारण उत्तम सिद्धि हमको प्राप्त हो ऐसी जिन सद्वैद्योंकी इच्छा है उन को ज्वरादि रोगोंका निदान जो आगे कहते हैं वह यत्नसे जानना चाहिये ॥ २५ ॥

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ २६॥

वैद्यको चाहिये कि प्रथम रोगकी परीक्षा करे पीछे औषध की परीक्षा करै फिर ज्ञानपूर्वक चिकित्सा करे ॥ २६ ॥

यस्तु रोगमविज्ञाय कर्माण्यारभते भिषक्। अप्यौषधविधानज्ञस्तस्य सिद्धिर्यदृच्छया॥

जो वैद्य रोगोंको विना जाने चिकित्सा करता है चाहे वह औषधमें प्रवीण भी हो तथापि उसकी सिद्धि प्रारब्धके अधीन है ॥ २७ ॥

अप्यौषधविधानज्ञः सर्वभेषज्यकोविदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ २८ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण औषधियोंके विधानको जाननेवाला है और सर्व औषधियोंके जाननेमें प्रवीण है तथा देश और कालके प्रमाणको जानता है, उसको सिद्धि में कुछ संशय नहीं ॥ २८ ॥

भैषज्याहारचेष्टानां यो न वेत्ति गुणागुणम् । न स वेत्ति भिषक्सम्यक्तस्य स्वास्थ्यहिताहितम् ॥ २९ ॥

जो वैद्य औषध, आहार और रोगीकी चेष्टाके गुण अवगुणोंको नहीं जानता वह उसके स्वास्थ्य संबन्धी हित और अहितको भी अच्छेप्रकारसे नहीं जान सकता ॥ २९ ॥

आदावन्ते रुजां ज्ञानं प्रयतेत चिकित्सकः । साध्यासाध्यविभागज्ञस्ततः कुर्य्याच्चिकित्सितम् ॥ ३० ॥

साध्य और असाध्य रोगको जाननेवाला वैद्य प्रथम रोगको अच्छे प्रकारसे जाने फिर उसकी चिकित्सा करै ॥ ३० ॥

यस्तु रोगविशेषज्ञः सर्वभैषज्यकोविदः । देशकालप्रमाणज्ञस्तस्य सिद्धिर्न संशयः ॥ ३१ ॥

जो वैद्य सम्पूर्ण रोगों और सब औषधियोंके विधानमें प्रवीण है तथा देश और कालके प्रमाणको जाननेवाला है, उसको निस्संदेह सिद्धि होती है ॥ ३१ ॥

दर्शनस्पर्शनप्रश्नैर्व्याधिज्ञानं त्रिधा मतम् । आदौ दृशस्ततः स्पर्शाच्छीतादिप्रश्नतोऽपरम् ॥ ३२ ॥

दर्शन (देखना), स्पर्श छूना और प्रश्न (पूँछना) इन तीन प्रकारसे रोगका ज्ञान होता है, वहां प्रथम मल, मूत्र, जिह्वादिकको देखै, पश्चात् रोगीके शरीरको छूकर शीतादिकको जाने फिर उससे सम्पूर्ण हाल पूँछे ॥ ३२ ॥

कृच्छ्रोपायः सुखोपायो द्विविधः साध्य उच्यते । असाध्यो द्विविधो ज्ञेयो याप्यो यश्चाप्रतिक्रियः ॥ ३३ ॥

कष्टसाध्य और सुखसाध्य ऐसे साध्य दो प्रकारका है तथा असाध्य भी दो प्रकारका है, एक याप्य और दूसरा अचिकित्स्य अर्थात् त्याज्य ॥ ३३ ॥

याप्याः केचित्प्रकृत्यैव साध्या याप्या उपेक्षिताः । स्वभावाद्व्याधयोऽसाध्याः केचिद्याप्या उपेक्षिताः ॥ ३४ ॥

कोई रोग तो स्वभावसे याप्य होते हैं और कोई साध्यकी उपेक्षा करनेसे याप्य हो जाते हैं, कोई स्वभावसे ही असाध्य होते हैं और कोई याप्यरोग उपेक्षा अर्थात् उनकी चिकित्सा नहीं करनेसे असाध्य होजाते हैं ॥ ३४ ॥

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्याश्चासाध्यतां तथा । घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणां निष्क्रियावताम् ॥ ३५ ॥

चिकित्सा नहीं करनेवाले मनुष्योंके साध्यरोग याप्य होजाते हैं, याप्यरोग असाध्य होजाते हैं और असाध्यरोग प्राणोंका नाश करते हैं ॥ ३५ ॥

जातमात्रश्चिकित्स्यस्तु नोपेक्ष्योऽल्पतया गदः । वह्निशत्रुविषैस्तुल्यः स्वल्पोऽपि विकरोत्यसौ ॥ ३६ ॥

रोगके उत्पन्न होते ही उसका यत्न करना चाहिये यह न समझे कि, रोग तो अभी उत्पन्न हुआ, साध्य है अथवा जरासा ही है ऐसी उपेक्षा न करे । क्यों कि, थोड़े दिनोंका उत्पन्न हुआ अल्प ही रोग, अग्नि, शत्रु और विषके समान अनेक प्रकारके विकारोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ३६ ॥

स च प्रकुपितो दोषः समुत्थानविशेषतः । स्थानान्तरगतश्चापि विकारान्कुरुते बहून् ॥ ३७ ॥

वही दोष कालान्तरमें अनेक कारणोंसे कुपित होकर पश्चात् स्थानान्तर में जाकर बहुतसे विकारोंको उत्पन्न कर देता है ॥ ३७ ॥

निवृत्तोऽपि पुनर्व्याधिः स्वल्पेनायाति हेतुना । क्षीणे मार्गे कृते दोषैः शेषः सूक्ष्म इवानलः ॥ ३८ ॥

आराम हुआ रोग, दोषोंके द्वारा क्षीण किये हुए मार्गमें शेष रह जाने पर अल्प कुपथ्य करनेसे ही जरासी अग्निकी चिनगारीके समान फिर प्रचण्ड हो जाता है ॥ ३८ ॥

कर्म्मजा व्याधयः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे । कर्म्मदोषोद्भवाश्चान्ये कर्म्मजास्ते स्वहेतुकाः ॥ ३९ ॥

कोई व्याधि कर्मज होती है और कोई दोषज होती हैं और कोई व्याधि कर्मज और दोषज दोनों मिला

ऋतुप्रकरण ।

वर्षा नभोनभस्यौ तु तत्र वायुः प्रकुप्यति । पित्तं प्रायेण रक्तञ्च शरदाश्विनकार्त्तिकौ ॥ ५० ॥

श्रावण और भादोंको वर्षाऋतु कहते हैं, वर्षाऋतुमें वायु कुपित होती है, आश्विन और कार्तिकको शरद्ऋतु कहते हैं, शरद्ऋतुमें प्रायः पित्त और रुधिर कुपित होते हैं ॥ ५० ॥

हेमन्तो मार्गपौषौ तु वातलो रूक्ष एव तु । तद्वच्च शिशिरो माघः फाल्गुनश्च प्रकीर्त्तितः ॥ ५१ ॥

मार्गशिर और पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं. हेमन्त ऋतु वातकारक और है । माघ और फाल्गुनको शिशिरऋतु कहते हैं, शिशिरऋतुके गुण भी उसीके समान हैं ॥ ५१ ॥

वसन्तश्चैत्रवैशाखौ तस्मिञ्श्लेष्मा प्रवर्त्तते । ज्येष्ठाषाढौ च विख्यातौ निदाघः पित्तवानपि ॥ ५२ ॥

चैत्र और वैशाखको वसन्तऋतु कहते हैं, वसन्तऋतुमें कफ कुपित होता है । ज्येष्ठ और आषाढको ग्रीष्मऋतु कहते हैं. ग्रीष्मऋतुमें पित्त कुपित होता है ॥ ५२ ॥

जलप्रकरण ।

यथर्तुक्रमनिर्दिष्टं जलं क्वाथ्यं च वक्ष्यते । वर्षासूदकमादाय पचेत्तत्सप्तभागिकम् । अष्टभागावशिष्टं तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ५३ ॥

जिसप्रकार ऋतुओंमें जलके क्वाथका क्रम कहा है उसीको अब कहता हूं,वर्षाऋतुमें जल लेकर औटावे जब पचते २ सात भाग जल जाय अर्थात् सेरभरका आधपाव बाकी रह जाय तब उस अष्टावशेष निर्दोष जलको पीवे ॥ ५३ ॥

धारापातेन विष्टम्भि दुर्जरं पवनाहतम् । शृतशीतं त्रिदोषघ्नं वाप्यान्तर्भावितं भुवि ॥ ५४ ॥

वही औटा हुआ जल धारारूपसे पतित होनेपर विष्टंभकारक होता है और वायुसे ताडित होनेपर दुर्जर होता है । जो औटाकर बर्त्तनमें ही मुँह ढककर शीतल किया गया हो ऐसा शृतशीतल जल त्रिदोषनाशक होता है ॥ ५४ ॥

प्रावृट् नभोनभस्यौ च इषोर्जौ तु शरन्मतौ । मार्गपौषौ तु हेमन्तः शिशिरो माघफाल्गुनौ ॥ वसन्तश्चैत्रवैशाखौ निदाघः शुचिशुक्रभाक् ॥ ५५ ॥

श्रावण और भादोंको प्रावृट्ऋतु कहते हैं, क्वार और कार्तिकको शरद्ऋतु कहते हैं, मार्गशिर और पौषको हेमन्तऋतु कहते हैं, माघ और फाल्गुनको शिशिरऋतु कहते हैं, चैत्र और वैशाखको वसन्त ऋतु कहते हैं, ज्येष्ठ और आषाढको ग्रीष्मऋतु कहते ह ॥ ५५ ॥

प्रावृट्काले शृतं तोयं दद्याच्चाष्टगुणं जलम् । अष्टभागावशिष्टं तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ ५६ ॥

प्रावृट्ऋतुमें अष्टावशेष अर्थात् सेरभरका आधपाव शेष रहा और औटाकर शीतल कियाहुआ निर्दोष जल पीना चाहिये ॥ ५६ ॥

शरदि षड्गुणं तोयं दत्त्वा क्वथितमाचरेत् । षष्ठभागावशिष्टन्तु पिबेद्दोषहरं जलम् ॥ ५७ ॥

शरद्ऋतुमें षष्ठावशेष अर्थात् तीन पाव जलको औटावे, जब औटते २ आध पाव रह जाय तब उस दोषनाशक जलको पीवे ॥ ५७ ॥

हेमन्ते च शृतं तोयं दत्त्वा पञ्चगुणं जलम् । पञ्चभागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ (१)

हेमन्तऋतुमें सवासेर जलको औटावे, जब औटते २ पावभर जल बाकी रह जाय तब उस पंचावशेष निर्दोष जलको पीवे ॥ (१)

शिशिरे च शृतं तोयं दत्त्वा चतुर्गुणं जलम् । चतुर्भागावशिष्टन्तु निर्दोषमुदकं पिबेत् ॥ (२)

शिशिरऋतुमें चतुर्थांश शेष अर्थात् एक सेर जलको औटावे जब औटते २ पाव भर बाकी रह

जाय तब शीतल करके उस निर्दोष जलको पीवे ॥ (२)

वसन्ते त्रिगुणं तोयं दत्त्वा कथितमाचरेत् । तृतीयभागशिष्टन्तु पिबेद्दोषहरं जलम् ॥ ५८ ॥ (३)

वसन्तऋतुमें तीन भागका एक भाग जल बाकी रह जाय अर्थात् तीनपाव जलको औटावे जब औटते २ एक पाव रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५८ ॥ (३)

ग्रीष्मे च द्विगुणं तोयं दत्त्वा वापि भिषग्वरः । अर्धोदकावशिष्टन्तु पिबेद्दोषहरं जलम् ॥ ५९ ॥

ग्रीष्मऋतुमें अर्द्धावशेष अर्थात् एकसेर जलको औटावे जब औटते २ आधासेर बाकी जल रह जाय तब उसको शीतल करके पान करे ॥ ५९ ॥

कोपः शरद्वसन्तेषु बहुकालेषु शान्तितः ॥ कफपित्तानिलाः पूर्वमध्यान्तेषु व्यवस्थिताः । वयोहोरात्रिभुक्तानां सन्धिष्वपि कफानिलौ ॥ ॥६०॥ वायोः प्रत्यूषसायाह्ने जीर्णान्ते च विसर्पणम् । पित्तस्याहो निशश्चार्द्धे जीर्णमाने च लक्षयेत् ॥ ६१ ॥ भुक्तमात्रमदोषे तु पूर्वाह्ने श्लेष्मणो भवेत् । एकद्वित्रिविभागेन दुष्टान्दोषान्विशोधयेत् ॥ ६२ ॥

शरद् और वसन्तऋतुमें कुपित हुए वातादिदोष बहुत कालमें शांत होते हैं. कफ, पित्त और वात ये तीनों दोष अवस्था, दिन, रात्रि और भोजन, इनके प्रथम, मध्य और अंतभागमें व्यवस्थित हैं अर्थात् प्रथम बाल्यावस्थामें कफ, दूसरी तरुणावस्थामें पित्त और अंत अर्थात् वृद्धावस्थामें वायुका समय होता है, दिनके प्रथमभागमें कफ, मध्यमें पित्त, अन्तमें वातका समय होता है, रातके प्रथमभागमें कफ, मध्यभागमें पित्त और रात्रिके अंतमें वातका समय होता है। भोजन करते समय कफ, भोजनके पचते समय पित्त और भोजनके पच जानेपर वायुका समय होता है तथा इनकी संधियोंमें कफ और वायुका समय होता है. एक, दो, तीन इन भागोंसे दुष्ट दोषोंको क्रमसे शोधन करे ॥ ६० ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

शीते शीतप्रतीकारमुष्णे चैवोष्णवारणम् । कृत्वा कुर्य्यात्क्रियां प्राप्तां क्रियाकालं न हापयेत् ॥ ६३ ॥

शीत कालमें शीतका प्रतिकार करते हुए और उष्ण कालमें उष्णताका प्रतिकार करतेहुए चिकित्सा करे ! किन्तु समयके विपरीत कदापि चिकित्सा न करे तथा क्रियाके कालको न जाने दे अर्थात् समयपर चिकित्सा करे ॥ ६३ ॥

अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न कृता क्रिया । क्रिया हीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति ॥ ६४

जो वैद्य अप्राप्तसमयमें चिकित्साको करता है और प्राप्तसमयमें अथवा क्रियाके समयमें क्रिया नहीं करता है यह क्रियाहीन वैद्य साध्य रोगोंको भी नहीं सिद्ध कर सकता ॥ ६४ ॥

यात्युदीर्णं शमयति नान्यव्याधिं करोति च । सा क्रिया न तु या व्याधिं हरत्यन्यमुदीरयेत् ॥ ६५ ॥

जो बढे हुए रोगको शमन करे तथा दूसरे रोगको उत्पन्न नहीं करे उसको चिकित्सा कहते हैं. किन्तु उसको चिकित्सा नहीं कहते कि जो एक रोगको तो नष्ट करे और दूसरेको उत्पन्न करे ॥ ६५ ॥

प्रकृतिलक्षण ।

शुक्रासृग्गर्भिणीभोज्यचेष्टा गर्भाशयान्तरे । यः स्याद्दोषोऽधिकस्तेन प्रकृतिः सप्तधोदिता ॥ ६६ ॥

पुरुष और स्त्रीके संयोगके समय वीर्य, रज, स्त्रीका भोजन, स्त्रीकी चेष्टा और गर्भाशय इनमें जौनसा दोष अधिक हो उसी दोषके अनुसार गर्भस्थ जीवकी प्रकृति होती है. इस प्रकार यह प्रकृति वातादिदोषसे सात प्रकारकी कही है ॥ ६६ ॥

कृशो रूक्षोऽल्पकेशश्च चलचित्तो [illegible] च स्थिरः । बहुवाग्व्य[illegible] वातप्रकृतिको नरः ॥ ६७

वातप्रकृतिवाले मनुष्य [illegible] अल्पकेशोंवाले,

स्थित नहीं रहे, बहुत बोलनेवाले और स्वप्नमें आकाशमें जानेवाले अर्थात् प्रायः सुपनेमें आकाशमें गमन करते हैं ॥ ६७ ॥

अकालपलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनो बुधः । स्वप्नेऽपि दीप्तिवत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिको नरः ॥ ६८ ॥

पित्तप्रकृतिवाले मनुष्य विना समय (थोडी-अवस्था) में सफेद बालोंवाले,गौरवर्ण, अधिक पसीनेवाले, क्रोधस्वभावी, पंडित और स्वप्नमें सूर्य्य, चन्द्रमा, अग्नि इत्यादि दीप्त पदार्थोंको देखते हैं ॥ ६८ ॥

स्थिरचित्तः सुबद्धाङ्गः सुव्रतः स्निग्धमूर्द्धजः । स्वप्ने जलाशयालोकी श्लेष्मप्रकृतिको नरः ॥ ६९ ॥

कफप्रकृतिवाला मनुष्य स्थिरचित्तवाला, गठीले शरीरवाला,सुडौल, सदाचारी, चिकने बालोंसे युक्त और स्वप्नमें जलाशयको देखनेवाला होता है ॥६९॥

संमिश्रैर्लक्षणैर्ज्ञेया द्वित्रिदोषानुगा नराः । दोषश्चेद्रससद्भावे व्याधितप्रकृतिः स्मृतः ॥ ७० ॥

दो दोषोंके लक्षणोंके होनेसे द्वन्द्वज प्रकृति और तीन दोषोंके होनेसे त्रिदोषज प्रकृति होती है, दोष और रसभावके होनेसे रोगीकी व्याधित प्रकृति कही है ॥ ७० ॥

प्रकृतिमिह नराणां भौतिकीं केचिदाहुः पवनदहनतोयैः कीर्तितास्तास्तु तिस्रः । स्थिरविपुलशरीरः पार्थिवश्च क्षमावान् शुचिरथ चिरजीवी नाभसः खैर्महद्भिः ॥ ७१ ॥

कोई २ वैद्य कहते हैं कि, मनुष्योंकी प्रकृति पंच महाभूतोंसे बनी है जैसे कि पवन (वात), अग्नि (पित्त) और जल (कफ) इन तीन महाभूतोंवाले मनुष्योंकी प्रकृति तो ऊपर कह चुके,अब दो पृथ्वी और आकाश प्रकृतिवाले मनुष्योंके लक्षण कहते हैं, जो मनुष्य स्थिर और पुष्ट शरीरवाला हो तथा क्षमावान् हो उनकी पृथ्वी प्रकृति जानना । जो शुद्ध आत्मावाला हो और बहुतकाल पर्य्यन्त जीवे उनकी आकाशप्रकृति जाननी ॥ ७१ ॥

विषजातो यथा कीटो न विषेण विपद्यते । तद्वत्प्रकृतयो मर्त्यं शक्नुवन्ति न बाधितुम् ॥ ७२ ॥

जिस प्रकार विषसे उत्पन्न हुआ कीडा विषके द्वारा पीडित नहीं होता उसी प्रकार प्रकृतिगत दोष उसी प्रकृतिवाले मनुष्यको पीडित नहीं करते ॥ ७२ ॥

वायुः सामो विबन्धाग्निसादस्तम्भनकूजनैः । वेदनाशोफनिस्तोदैः क्रमशोऽङ्गानि पीडयेत् ॥ ७३ ॥

आमयुक्त वायु-विबन्ध, अग्निकी मंदता, स्तम्भ, कूजन, पीडा, सूजन, तोडनेके समान वेदना और क्रमसे सब अंगोंको पीडित करता है ॥ ७३ ॥

विचरेद्युगपच्चापि गृह्णाति कुपितो भृशम् । स्नेहाद्यैर्वृद्धिमायाति मेघे सूर्य्योदये निशि ॥ ७४ ॥

एकसाथ सब अंगोंमें विचरण करती है और वारंवार कुपित होती है तथा स्नेहादिक (तैलादि) पदार्थोंसे वृद्धिको प्राप्त होतीहै एवं मेघके समय, सूर्य्योदय और रात्रिमें बढ जाती है ॥ ७४ ॥

निरामो विशदो रूक्षो निर्विबन्धोऽल्पवेदनः । विपरीतगुणैः शान्तिं स्निग्धैर्याति विशेषतः ॥ ७५ ॥

निराम वायु-विशद, रूखी, विबन्धरहित, अल्प वेदना युक्त, सामवायुसे विपरीत गुणोंवाली और विशेषकर स्निग्ध पदार्थोंसे शांत होती है ॥ ७५ ॥

दुर्गन्धं हरितं श्यावं पित्तमम्लरसं गुरु । अम्लिकाकण्ठहृद्दाहकरं सामं विनिर्दिशेत् ॥ ७६ ॥

सामपित्त-दुर्गन्धित, हरित, श्यामरंगका, खट्टे रसवाला, भारी तथा खट्टापन व कंठ और हृदयमें दाहको उत्पन्न करता है ॥ ७६ ॥

आताम्रं पित्तमत्युष्णं रसे कटुकमस्थिरम् । पक्वं विगन्धि विज्ञेयं रुचिवह्निबलप्रदम् ॥ ७७ ॥

निराम पित्त-ताम्रवर्ण, अत्यंत उष्ण, रसमें कटु और चंचल होता है एवं पक्व, गंधरहित, रुचिकारक, अग्नि और बलकारक होता है ॥ ७७ ॥

फेनिलस्तंतुलः श्यावः कण्ठदेशेऽव-तिष्ठति । सामो बलाशो दुर्गन्धः क्षुदुद्गारविघातकृत् ॥ ७८ ॥

साम कफ-फेनिल (झागोंसे मिला हुआ), तंतुवार, श्याव, कंठमें रुकनेवाला, दुर्गन्धित तथा छींक और डकारको रोकनेवाला है ॥ ७८ ॥

फेनवान्पिण्डितः पाण्डुर्निःसारोऽगन्ध एव च । पक्वः स एव विज्ञेयः स्वेद-वान्वक्त्रशुद्धिकृत् ॥ ७९ ॥

पका हुआ कफ झागोंदार, गांठवाला, पांडुवर्ण, सारहीन, गंधरहित, पसीनेसे युक्त और मुखको शुद्ध करनेवाला होता है ॥ ७९ ॥

देशप्रकृतिलक्षण ।

बहूदकनगोऽनूपः कफमारुतरोग-वान् । जाङ्गलोऽल्पाम्बुशाखी च रक्तपित्तगदोत्तरः ॥ ८० ॥

जिसमें बहुतसे जलाशय और पर्वत हों उसको अनूपदेश कहते हैं, अनूपदेश--कफ और वायुके रोगोंको उत्पन्न करता है. जिसमें थोडे जलाशय और थोडे वृक्ष हों उसको जांगलदेश कहते हैं, जांगलदेश--रक्त और पित्तके रोगोंको उत्पन्न करता है ॥ ८० ॥

संश्लिष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणो मतः । समाः साधारणे यस्माद्वर्षा-शीतोष्णमारुताः । समता तेन दोषाणां तस्मात्साधारणो वरः ॥८१॥

जिसमें दोनों देशोंके लक्षण मिलते हों उसको साधारणदेश कहते हैं. साधारणदेशमें वर्षा, शीत, उष्ण और पवन समान होते हैं, इस कारण साधारणदेश सब देशोंमें उत्तम है ॥ ८१ ॥

स्वदेशे निचिता दोषास्त्वन्यस्मि-न्कोपमागताः । बलवन्तस्तथा न स्युर्जलजा वा स्थलाहृताः ॥ ८२ ॥

अपने देशमें संचित हुए दोष अन्य देशमें कुपित हों तो बलवान् नहीं होते, उसीप्रकार जलदेशके दोष स्थलमें और स्थलदेशके दोष जलमें कुपित होनेपर बलवान् नहीं होते ॥ ८२ ॥

उचिते वर्त्तमानस्य नास्ति देशकृत भयम् । आहारस्वप्नचेष्टादौ तदे शस्य गुणे सति ॥ ८३ ॥

जो मनुष्य उचित आहार और विहार करते उनको दुष्टदेशका कुछ भी भय नहीं, इसलिये जि देशमें रहे उसके अनुसार ही आहार, निद्रा चेष्टा करनी चाहिये ॥ ८३ ॥

मिथ्यादृष्टा विकारा हि दुराख्याता स्तथैव च । यथा दुष्परिपृष्टाश्च मोह येयुश्चिकित्सकान् ॥ ८४ ॥

जिन रोगोंको वैद्यने अच्छे प्रकारसे नहीं दे और जिन रोगोंका समस्त हाल रोगीने वैद्यसे नहीं कहा तथा जिन रोगोंका हाल वैद्यने रोग अच्छे प्रकार नहीं पूंछा ऐसे रोग वैद्यको मोहित हैं, इसलिये वैद्यको उचित है कि, अच्छे प्रकारसे रो की चेष्टाको देखे और समस्त व्यवस्था तथा रोगी भी वैद्यको अच्छे प्रकारसे सब सुना दे ॥ ८४ ॥

चिकित्सापादचतुष्टय ।

वैद्यो व्याध्युपसृष्टश्च भेषज्यं परिचा रकः । एते पादाश्चिकित्सायाः कर्म साधनहेतवः ॥ ८५ ॥

वैद्य, रोगी, औषध और परिचारक ये चिकि के चार पाद चिकित्सा कर्म हैं और येही (कार साधनके हेतु हैं ॥ ८५ ॥

वैद्यलक्षण ।

तत्त्वाधिगतशास्त्रार्थो दृष्टकर्म्मा स्व कृती । लघुहस्तः शुचिः शूरः सर्व पस्करभेषजः ॥८६॥ प्रत्युत्पन्नमतिर्धी मान्व्यवसायी प्रियंवदः। सत्यधर्मर यश्च स भिषक्पदमश्नुते ॥ ८७ ॥

जो आयुर्वेद शास्त्रके तत्त्वार्थको अच्छे प्रक जानता हो, जिसने अन्य वैद्यकी कीहुई कि अनेकवार देखा हो और अपने आप चिकित्सा न्धी क्रियामें कुशल हो, हलके हाथवाला हो, हो, शूर (गंभीर रोगीको देखकर घबड़ावे न सर्वप्रकारके चिकित्साके उपकरण और औषधि

युक्त हो, अत्यन्त तीक्ष्णबुद्धिवाला, महाबुद्धिमान्, उद्योगी, प्रियवचन बोलनेवाला और सत्यधर्ममें तत्पर ऐसा वैद्य उत्तम होता है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

रोगीके लक्षण ।

आयुष्मान्सत्यवान्साध्यो द्रव्यवानात्मवानपि । उच्यते व्याधितः पादो वैद्यवाक्यकृदास्तिकः ॥ ८८ ॥

आयुष्मान्, सत्यधर्मपरायण, साध्य, द्रव्यवान्, इष्टमित्रोंसे युक्त, वैद्यकी आज्ञाको माननेवाला और आस्तिक ऐसा रोगी अच्छा कहा है ॥ ८८ ॥

औषधलक्षण ।

प्रशस्तदेशसम्भूतं प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम् । अल्पमात्रं महावीर्य्यं गन्धवर्णरसान्वितम् ॥ ८९ ॥ दोषघ्नमग्लानिकरमविकारि विपर्य्यये । समीक्ष्य काले दत्तं च भैषज्यं पाद उच्यते ॥ ९० ॥

उत्तम देशमें उत्पन्न हुई, शुभ दिनमें उखाडी हुई, अल्प मात्रा वाली और अत्यन्त वीर्यवान् तथा गंध वर्ण और रससंयुक्त, दोषनाशक, ग्लानि और विकार नही करनेवाली और विचारकर उत्तम समयमें दीगई ऐसी औषध उत्तम होती है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

परिचारकलक्षण ।

स्निग्धोऽजुगुप्सुर्बलवान्युक्तो व्याधितरक्षणे । वैद्यवाक्यकृदश्रान्तः पादः परिचरो मतः ॥ ९१ ॥

स्नेहयुक्त, ग्लानिरहित, बलवान्, रोगीकी रक्षा करनेमें चतुर और वैद्यके वचनोंमें श्रद्धा करनेवाला ऐसा परिचारक उत्तम होता है ॥ ९१ ॥

गुणवद्भिस्त्रिभिः पादैश्चतुर्थो गुणवान्भिषक् । व्याधिमल्पेन कालेन महान्तमपि साधयेत् ॥ ९२ ॥

औषध, रोगी और परिचारक ये तीनों गुणवान् पाद और चौथा गुणवान् वैद्य ये चारों पाद अल्पकाल में ही बडे २ रोगोंको आरोग्य कर देते हैं ॥ ९२ ॥

वैद्यहीनास्त्रयः पादा गुणवन्तोऽप्यपार्थकाः । उद्गातृहोतृब्रह्माणो यथाऽध्वर्युं विनाऽध्वरे ॥ ९३ ॥

वैद्यके विना चिकित्साके तीनों पाद गुणवान् भी हों तो भी व्यर्थ है, जैसे अध्वर्युके विना यज्ञमें उद्गाता, होता और ब्रह्मा निरर्थक हैं ॥ ९३ ॥

वैद्यस्तु गुणवानेकस्तारयेदातुरं सदा । प्लवं प्रतितरैर्हीनं कर्णधार इवाम्भसि ॥ ९४ ॥

एक गुणवान् वैद्य ही सदैव रोगियोंको रोगरूप सागरसे तारता है जैसे प्रतितर (भीतरसे सहारा लगानेवाले अन्य मनुष्यों) के विना अकेला मल्लाह ही नावको पार लगाता है ॥ ९४ ॥

अथ मान ।

जालान्तरगते भानौ रजो यदणु दृश्यते । तैश्चतुर्भिर्भवेल्लिक्षा लिक्षाषड्भिश्च सर्षपः ॥ ९५ ॥

सूर्य्यकी किरणें जो घरके जाली, झरोखे, रोसनदान और धमालोंमें पडती हैं और उनमें जो रजके त्रसरेणु दीखते हैं उन चार त्रसरेणुओंकी एक लिक्षा होती है, छः लिक्षाकी एक सरसों होती है ९५

षट्सर्षपैर्यवस्त्वेको गुञ्जैका च यवैस्त्रिभिः । गुञ्जाभिर्दशभिः प्रोक्तो माषको ब्रह्मणा पुरा ॥ ९६ ॥

छः सरसोंका एक जौ होता है, तीन जवोंकी एक गुंजा, दश गुंजाका एक मासा होता है ॥ ९६ ॥

चत्वारो माषकाः शाणास्तद्द्वयं कोलसंज्ञितम् । वटकं द्रंक्षणं चैव कर्षस्तद्द्विगुणो भवेत् ॥ ९७ ॥

चार मासेका एक शाण होता है, दो शाणका एक कोल होता है, वटक और द्रंक्षण यह कोलके नाम हैं, दो कोलका एक कर्ष होता है ॥ ९७ ॥

अक्षः पिचुः पाणितलं कर्षं तच्च सुवर्णकम् । बिडालपदकं तुल्यं किञ्चिच्च कवलग्रहम् ॥ ९८ ॥

अक्ष, पिचु, पाणितल, कर्ष, सुवर्णक, बिडालपद, तुल्य, किंचित् और कवलग्रह ये कर्षके पर्याय हैं ॥ ९८ ॥

द्वाभ्यामर्धपलं ताभ्यां शुक्तिश्चापि तदुच्यते। स्याच्चतुष्कार्षिकं चैव पलं सर्वत्र निश्चितम् ॥ ९९ ॥

दो कर्षका आधा पल होता है, उसको शुक्ति भी कहते हैं, चार कर्षका एक पल होता है॥ ९९ ॥

यत्प्रकुञ्चं पलं मुष्टिस्तथा बिल्वं चतुर्थिका। षोडशिका समुद्दिष्टा पलमेकं प्रमाणतः ॥ १०० ॥

प्रकुञ्च, पल, मुष्टि, बिल्व, चतुर्थिका और षोडशिका यह पलके नाम हैं ॥ १०० ॥

रक्तिकादिषु मानेषु यावत्तु कुडवेषु च। शुष्कद्रवार्द्रद्रव्याणां तुल्यमानं प्रकीर्तितम् ॥ १०१ ॥

रत्तीसे लेकर कुडवपर्य्यंत सूखे, गीले और पतले पदार्थ समान लेने चाहिये ॥ १०१ ॥

क्वाथद्रव्यस्य बाहुल्यादुदकं स्वल्पमेव च। सम्यक्पाकं न मुञ्चन्ति हीनवीर्य्यन्तु केवलम् ॥ १०२ ॥

क्वाथद्रव्योंके अधिक और जलके अल्पहानसे अच्छे प्रकारसे पाक नहीं होता अर्थात् केवल हीनवीर्य्य होता है ॥ १०२ ॥

आर्द्रद्रव्यद्रवद्रव्यपलैरष्टाभिरेव च। शुष्कद्रव्यचतुष्केण कुडवः समुदाहृतः ॥ १०३ ॥

गीले पदार्थ और पतले पदार्थोंका आठ पलका कुडव होता है और सूखे पदार्थोंका चार पलका कुडव होता है ॥ १०३ ॥

चतुष्पलस्तु कुडवः स शरावार्द्ध उच्यते। मानिकाष्टौ पलान्यत्र धरणं दशभिः पलैः ॥ १०४ ॥

चार पलका कुडव होता है उसको अर्द्धशराव भी कहते हैं, आठ पलकी मानिका होता है, दस पलका धरण होता है ॥ १०४ ॥

द्वाभ्यां पलाभ्यां प्रसृतं तच्च षोडशकं विदुः। खारी च षोडश द्रोणा दशभिर्धरणैस्तुला ॥ १०५ ॥

दो पलका एक प्रसृत होता है, उसको षोडशक भी कहते हैं, षोडश द्रोणकी एक खारी होती है, दश धरणकी एक तुला होती है ॥ १०५ ॥

चत्वारः कुडवः प्रस्थः स शरावद्वयं मतम्। पलानि चैव विद्वद्भिः षोडशैव प्रकीर्त्तिताः ॥ १०६ ॥ प्रस्थाश्चत्वार एव स्युराढकोऽष्टशरावकः। कंसः स एव विज्ञेयः स तु पात्रं च पण्डितैः ॥ १०७ ॥ अपि मानविदो ह्येष चतुष्षष्टिपलो मतः। चत्वारश्चाढको द्रोणः स द्वात्रिंशच्छरावकः ॥ १०८ ॥ शूर्पार्द्धं नल्वणं चैव कलशो घट एव च। अयं च पलसंख्यातः षट्पञ्चाशच्छतद्वयम् ॥ १०९ ॥

चार कुडवका एक प्रस्थ होता है, उसको शरावद्वय और षोडशपल भी कहते हैं। चार प्रस्थका एक आढक होता है, उसको अष्टशराव, कंस, पात्र, और चतुःषष्टि पल भी कहते हैं। चार आढकका एक द्रोण होता है, उसको द्वात्रिंशच्छरावक, शूर्पार्द्ध, नल्वण, कलश और घट कहते हैं। इसकी पलसंख्या २५६ होती है ॥ १०६ ॥ । १०७ ॥ १०८॥ ॥ १०९ ॥

द्रोणद्वयं च शूर्पः स्यात्स कुम्भ इति चोच्यते। चतुष्षष्टिशरावोऽसौ व्यवहारार्थमुच्यते ॥११०॥

दो द्रोणका एक शूर्प होता है। उसको कुम्भ और चतुष्षष्टि शराव भी व्यवहारके लिये कहते हैं॥११०

स द्वादशपलानीह शतानां पञ्च चोच्यते। गोणी द्रोणाश्च चत्वारः स शराहशतं मतम्। अष्टाविंशति संयुक्तं सर्वथा सूक्ष्मबुद्धिभिः ॥१११॥ पलानां तु सहस्रेकं चतुर्विंशतिकं स्मृतम्। प्रस्थादिमानमारभ्य द्रव्यादेर्द्विगुणान्वितम्। कुडवोऽपि क्वचिद्दृष्टं यथा दन्तीघृते स्मृतम् ॥ ११२ ॥

इसकी पलसंख्या ५१२ होती है, चार द्रोणकी एक गोणी है, उसके एकसौ अट्ठाईस (१२८) शराव तथा १०२४ पल होते हैं, प्रस्थसे लेकर आगेको जो द्रव्य लेना हो तो दुगुना लेना चाहिये जैसे कि, दंती-घृतमें लिये जाते हैं। ॥ १११ ॥ ११२ ॥

वेणवक्षायसादीनां भाण्डं तु चतुरंगुलम्। विस्तीर्णमथ वृत्तं च कुडवं तं विनिर्दिशेत् ॥ ११३ ॥

कुडवपरिमाण--बाँस, काठ और लोहे आदिका चार अंगुल चौडा, चार अंगुल गहरा ऐसा एक गोल पात्र सामान्य वस्तु डालनेके लिये बनाया जाता है उसको कुडव परिमाण कहते हैं ॥ ११३ ॥

त्याज्य रोगी।

चण्डः साहसिको भीतः कृतघ्नो व्यग्र एव च। यो वैद्यनृपतिद्वेष्टा तद्वेष्टा शोकपीडितः ॥११४॥ याहच्छिको मुमूर्षुश्च विहीनः करणैश्च यः। वैरी वैद्यविदग्धश्च श्रद्धाहीनः सुशङ्कितः ॥ ११५ ॥ भिषजामभिधेयश्च नोपक्रम्या भिषग्विधाः। एतानुपाचरन्वैद्यो बहून्दोषानवाप्नुयात् ११६ तभ्योऽन्ये समुपक्रम्या नराः सर्वरुपक्रमैः। नैव कुर्वीत लोभेन चिकित्सापुण्यविक्रयम्। ईश्वराणां वसुमतां लिप्सेतार्थन्तु वृत्तये ॥ ११७ ॥

जो अत्यन्त क्रोधी, दुस्साहसके काम करनेवाला, डरपोक, उपकारको न माननेवाला, हठ करनेवाला, वैद्य, सज्जन और राजासे द्वेष करनेवाला, शोकसे पीडित, स्वेच्छाचारी, मरनेकी इच्छा करनेवाला, शिथिल इन्द्रियों वाला, वैरी, वैद्यपर विश्वास नहीं करनेवाला, श्रद्धारहित और वैद्यके वचनोंमें शंका करनेवाला ऐसे रोगीकी वैद्यको चिकित्सा नहीं करनी चाहिये तथा जो वैद्यके समान हो और जो वैद्यको ठगनेवाला हो ऐसे रोगीकी भी चिकित्सा नहीं करे क्योंकि ऐसे रोगियोंकी चिकित्सा करनेसे वैद्य अत्यन्त अपवादको प्राप्त होता है, इनके सिवा अन्यान्य सर्व प्रकारके रोगियोंकी विधिपूर्वक चिकित्सा करे. वैद्य लोभसे निर्धन पुरुषोंसे धन लेकर चिकित्साके पुण्यको बेचे नहीं किन्तु जो मनुष्य समर्थ और धनवान् हों उनसे आजीविकाके लिये धन लेने की इच्छा करे ११४ ॥ ११५ ॥ ११६ ॥११७ ॥

चिकित्सितं शरीरं यो न निष्क्रीणाति दुर्म्मतिः। स यत्करोति सुकृतं तत्सर्वं भिषगश्नुते ॥ ११८ ॥

जो दुष्टबुद्धि मनुष्य, अपने शरीरकी चिकित्सा कराता है और वैद्यको उसका कुछ बदला नहीं देता तो उसका उस शरीरके द्वारा किया हुआ समस्त पुण्य वैद्यको प्राप्त होजाता है ॥ ११८ ॥

क्वचिदर्थः क्वचिन्मैत्री क्वचिद्धर्म्मः क्वचिद्यशः। कर्म्माभ्यासः क्वचिच्चैव चिकित्सा नास्ति निष्फला ॥ ११९ ॥

चिकित्सा करनेसे कहीं धनकी प्राप्ति होती है, कहीं मित्रता होती है, कहीं धर्म्म, कहीं यश और कहीं क्रिया करनेका अभ्यास बढ़ता है: इसप्रकार चिकित्सा करना कहीं भी निष्फल नहीं होता११९॥

कुचैलः कर्कशः स्तब्धो ग्रामीणः स्वयमागतः। शस्यते यश्च वैद्यो न धन्वन्तरिसमो यदि ॥ १२० ॥

जो वैद्य मैले कुचैले वस्त्रवाला, अप्रिय वचन बोलनेवाला, मूर्ख, व्यवहारमें अकुशल, ग्रामका रहनेवाला, विना बुलाये अपने आप आयाहुआ धन्वंतरिके समान हो तो भी उसका आदर नहीं होता॥१२०॥

स वैद्यो नहि योऽसाध्यानारभेत चिकित्सितुम्। अवैद्यजीविकासिद्धिः स्याद्घुणाक्षरवत्क्वचित् ॥१२१॥

जो असाध्यरोगकी चिकित्सा करना आरम्भ करता है वह वैद्य नहीं अर्थात् कुवैद्य है। ऐसे कुवैद्यकी जीविकासिद्धि कदाचित् घुणाक्षरन्यायके समान होजाती है ॥ १२१ ॥

मापान्नं विड्ग्रहे मेहे यवमद्यं मदात्यये॥ अशुद्धिपूर्वमप्याशु सेवितं भेषजं भवेत् ॥ १२२ ॥

जैसे कि मूर्ख मनुष्य भी शीघ्र ही विद्वान् और प्रमेहरोगमें प्रथम मापाक्ष और मदात्यय रोगमें जौकी मदिरा सेवन करे तो औषधि होजाती है ॥ १२२ ॥

आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्वन्ति स्वहिताय ये। पुण्यायुर्बुद्धिसंयुक्ता नीरोगास्तु भवन्ति ते ॥ १२३ ॥

जो मनुष्य अपने हितके लिये आयुर्वेदोक्त युक्तिको पालन करते हैं वे पुण्य, आयु और बुद्धियुक्त होकर सदैव नीरोग रहते हैं ॥ १२३ ॥

आयुर्वेदलक्षण।

आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा। विद्यते यत्र विद्वद्भिः स चायुर्वेद उच्यते ॥ १२४ ॥

जिसमें आयुका हित, अहित, रोगका निदान और उसके शमनके उपाय विद्यमान हों उस शास्त्रको विद्वान् आयुर्वेद कहते हैं ॥ १२४ ॥

रोगगणना।

ज्वरोऽतिसारो ग्रहणी चार्शोऽजीर्णं विषूचिका। अलसः सविलम्बी च कृमिरुक्पाण्डुकामलाः ॥ १२५ ॥ हलीमकं रक्तपित्तं राजयक्ष्मा उरःक्षतम्। कासो हिक्का तथा श्वासः स्वरभेदस्त्वरोचकः ॥ १२६ ॥ छर्दिस्तृष्णा च मूर्च्छा च रोगाः पानात्ययादयः। दाहाख्यस्त्वपरोन्मादश्चापस्मारोऽनिलामयः ॥१२७॥ वातरक्तमुरुस्तम्भ आमवातोऽथ शूलरुक्। पङ्क्तिजं शूलमानाह उदावर्त्तोऽथ गुल्मरुक् ॥ १२८ ॥ हृद्रोगो मूत्रकृच्छ्रं च मूत्राघातं तथाऽश्मरी। प्रमेहो मधुमेहश्च पिटिकाश्च प्रमेहजाः ॥ १२९ ॥ मेदोदोषोदरं शोथो वृद्धिश्च गलगण्डकः। गण्डमाला ततो ग्रन्थिरर्बुदं श्लीपदं ततः॥१३०॥ विद्रधिव्रणशोफौ च द्वौ व्रणौ भग्ननाडिकौ। भगन्दरोपदंशौ च शूकदोषस्त्वगामयः ॥१३१॥ शीतपित्तमुदर्दश्च कोठश्चैवाम्लपैत्तिकः। विसर्पश्च सविस्फोटः सरोमन्ती मसूरिका ॥१३२॥ क्षुद्रास्यकर्णनासाक्षिशिरःस्त्रीबालकामयाः। विषं चेत्ययमेवात्र ज्ञेय उद्देशसंग्रहः ॥ १३३ ॥

(सब रोगोंकी गणना लिखते हैं:—)

ज्वर, अतिसार, संग्रहणी, अर्श (बवासीर), अजीर्ण, विषूचिका, अलस, विलम्बिका, कृमिरोग, पांडुरोग, कामला, हलीमक, रक्तपित्त, राजयक्ष्मा, उरःक्षत, कास (खाँसी), हिक्कारोग, श्वास, स्वरभेद, अरोचक, छर्दि (वमन), तृषारोग, मूर्च्छारोग, पानात्ययादिरोग, दाहरोग, उन्मादरोग, अपस्मार, वातरोग, वातरक्त, ऊरुस्तम्भ, आमवात, शूलरोग, पंक्तिशूल, आनाहरोग, उदावर्त, गुल्मरोग, हृदयरोग, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघात, अश्मरीरोग, प्रमेह, मधुमेह, प्रमेहपिटिका, मेदोरोग, उदररोग, शोथरोग, अंडवृद्धि, गलगण्डरोग, गण्डमाला, ग्रंथिरोग, अर्बुदरोग, श्लीपदरोग, विद्रधि, व्रणशोफ, व्रणरोग, नाडीव्रण, भग्नरोग, भगन्दर, उपदंशरोग, शूकदोष, कुष्ठादि त्वचाके रोग, शीतपित्त, उदर्द, कोठरोग, अम्लपित्त, विसर्परोग, रोमान्तिका, मसूरिका, क्षुद्ररोग, मुखरोग, कर्णरोग, नासारोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, स्त्रीरोग, बालरोग, विषरोग ये रोग इस ग्रंथमें कहे जायँगे ॥१२५॥१२६॥१२७॥१२८॥१२९॥१३०॥१३१॥ ॥१३२॥१३३॥

इति निदानाधिकारः।

अथ ज्वराधिकारः।

ज्वरः समस्तरोगाणां यतो राजेति विश्रुतः। अतः प्रथमतस्तस्य प्रवक्ष्यामि चिकित्सितम् ॥ १३४ ॥

ज्वर सकल रोगोंका राजा है ऐसा सुना जाता है, इसकारण सबसे पहले ज्वरकी चिकित्सा कहता हूँ ॥ १३४ ॥

दक्षापमानसंक्रुद्धरुद्रनिःश्वाससम्भवः। ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वः सङ्घातागन्तुजः स्मृतः ॥ १३५ ॥

ज्वर दक्षके अपमानसे क्रोधित हुए महादेवके श्वाससे उत्पन्न हुआ है और वह पृथक् (वातज, पित्तज, कफज), द्वन्द्वज-(वातपित्तज, कफपित्तज, वातकफज), त्रिदोषज-(सन्निपात जिसमें वात, पित्त, कफ तीनों मिले हुए हों) और आगन्तुज-(अभिघातादिजनित) इन भेदोंसे आठ प्रकारका है॥१३५॥

दुष्टाहारविहाराभ्यां दोषा ह्यामाशयाश्रयाः । बहिर्निरस्य कोष्ठाग्निं ज्वरदाः स्यू रसानुगाः ॥ १३६ ॥

दुष्ट आहार और दुष्ट विहारके करनेसे वातादि दोष आमाशयमें स्थित होकर कोठेके अग्निकी गरमीको बाहर निकालकर रसमें प्राप्त होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ १३६ ॥

श्रमोऽरतिर्विवर्णत्वं वैरस्यं नयनप्लवः। इच्छाद्वेषौ मुहुश्चापि शीतवातातपादिषु ॥१३७॥ जृम्भाङ्गमर्दो गुरुता रोमहर्षोऽरुचिस्तमः। अप्रहर्षश्च शीतं च भवत्युत्पत्स्यति ज्वरे ॥ १३८ ॥

बिना परिश्रम किये श्रम मालूम होना,कहीं चित्त न लगना, शरीरका रंग बदल जाय,मुखमें नीरसता, नेत्रोंमें जल भर आना, शीतवायु और धूपमें वारंवार इच्छा और वारंवार अप्रीतिका होना, जम्भाइयोंका आना, अंगोंका टूटना, शरीरमें भारीपन, रोमांच होना, भोजनमें अरुचि, अंधकारदर्शन, हर्षका नाश और शीतका लगना ये ज्वरके पूर्वरूप हैं अर्थात् ज्वरके पहिले ये लक्षण होते हैं ॥ १३७॥१३८॥

सामान्यतो विशेषात्तु जृम्भात्यर्थं समीरणात् । पित्तान्नयनयोर्दाहः कफादन्नारुचिस्तथा ॥ १३९ ॥

ये सामान्य पूर्व लक्षण कहे, अब कुछ विशेष कहते हैं । वातज्वरमें प्रथम जम्भाई अधिक आती हैं, पित्तज्वरमें नेत्रोंमें दाह होता है और कफज्वरमें अन्नसे अरुचि होती है ॥ १३९ ॥

सर्वलिङ्गसमावायः सर्वदोषप्रकोपजे । रूपैरन्यतराभ्यां च संसृष्टैर्द्वन्द्वजं विदुः ॥ १४० ॥

त्रिदोषज ज्वरमें तीनों दोषोंके लक्षण होते हैं और द्वन्द्वजज्वरके पूर्वमें अन्यान्य दोदोषोंके मिले हुए लक्षण होते हैं ॥ १४० ॥

ज्वरस्य पूर्वरूपेषु वर्तमानेषु बुद्धिमान्। पाययेत्सर्पिरेवादौ ततः स लभते सुखम् ॥ १४१ ॥ विधिर्मारुतजेष्वेष पैत्तिकेषु विरेचनम् । मृदुप्रच्छर्दनं तद्वत्कफजेषु विधीयते । सर्वं त्रिदोषजेपूक्तं यथादोषं विकल्पयेत् ॥ १४२ ॥ स्वेदावरोधः सन्तापः सर्वाङ्गग्रहणं तथा । युगपद्यत्र रोगे तु स ज्वरो व्यपदिश्यते ॥ १४३ ॥ दोषैः सर्वैर्बहुधा समुद्भ्रान्तैर्विमार्गगैः । विक्षिप्यमानोऽन्तरग्निर्भवत्याशु बहिश्चरः॥१४४ रुणद्धि चाप्ययं धातुं यस्मात्तस्माज्ज्वरातुरः । भवत्यत्युष्णगात्रश्च स्विद्यति न च सर्वशः ॥ १४५ ॥ परिषेकान्प्रदेहांश्च स्नेहान्संशोधनानि च । दिवास्वप्नं व्यवायश्च व्यायामं शिशिरं जलम् । क्रोधप्रवातभोज्यांश्च वर्जयेत्तरुणज्वरी ॥ १४६ ॥

अब ज्वरके पूर्वरूपकी चिकित्सा कहते हैं । वातज्वरके पूर्वरूपमें रोगीको घी पिलावे तो उसको सुख प्राप्त होता है । पित्तज्वरके पूर्वरूपमें मृदु विरेचन दे और कफके पूर्वरूपमें मृदु वमन करावे । त्रिदोषज्वरके पूर्वरूपमें दोषोंकी कल्पना कर यथादोषानुसार कर्म करे । ज्वरके लक्षण—पसीनेका न आना, सन्तापका होना और सम्पूर्ण अंगोंमें पीडाका होना ये सब लक्षण जिसमें एक साथ हों उसको ज्वर कहते हैं । वातादिदोष वेगवान् हो इधर उधर फैलकर एवं तिर्यग्गामी होकर भीतरी अग्निको बाहर निकाल देते हैं। उस अग्निके निकलनेसे पसीना रुक जाता है इसकारण सब शरीर गरम हो जाता है तब उसको ज्वरातुर कहते हैं।ज्वरमें परिषेक(जलादिकसे शरीरको

सींचना) चन्दनादिका शरीरमें लेप करना, तैल घृतादिक स्निग्ध पदार्थोंका सेवन, वमन, विरेचनादि कर्म्म, दिनमें सोना, मैथुन करना, दंड कसरत आदि करना, शीतल जलका सेवन, क्रोध, वायुका सेवन और भोजन ये सब, नवीन ज्वरवाला मनुष्य त्याग देवे ॥१४१॥ १४२॥ १४३॥ १४४॥ १४५॥ १४६॥

शोथश्छर्दिर्मदो मूर्च्छा तृष्णा भ्रममरोचकः । प्राप्नोत्युपद्रवानेतान्परिषेकादिसेवनात् ॥ १४७ ॥

यदि नवीन ज्वरवाला उपरोक्त परिषेकादि सेवन करे तो उसके शोथ, (सूजन), वमन, मद, मूर्च्छा, तृषा, भ्रम और अरुचि आदि उपद्रव उत्पन्न होते हैं ॥ १४७ ॥

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा भोजयेल्लघुभोजनम् । श्लेष्मक्षये प्रवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा । वेगापायेऽन्यथा तद्धि ज्वरवेगाभिवर्द्धनम् ॥ १४८ ॥

जो ज्वरसे पीडित हो अथवा जो ज्वरसे मुक्त हो गया हो उसको अवश्य हलका भोजन कराना चाहिये। क्योंकि कफके क्षय होनेसे गरमी बढजाती है और उससे जठराग्नि प्रबल हो जाती है इसलिये वेगके हलके होने पर पथ्य देना चाहिए नहीं तो दोष वेग को प्राप्त होकर ज्वरके वेगको बढा देते हैं ॥ १४८ ॥

ज्वरितो हितमश्नायाद्यद्यप्यस्याऽरुचिर्भवेत् । अन्नकाले ह्यभुञ्जानः क्षीयते म्रियतेऽथवा ॥ १४९ ॥

अतएव ज्वरवाले मनुष्यको यदि अरुचि भी हो तो भी हितकारक पदार्थोंको भक्षण करावे, क्योंकि अन्न देनेके समय भोजन नहीं करनेसे ज्वररोगी क्षीण हो जाता है अथवा मर जाता है ॥१४९॥

गुर्वभिष्यन्द्यकाले च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन । न तु तस्याहितं भुक्तमायुषे वा सुखाय च ॥ १५० ॥

ज्वररोगीको भारी और अभिष्यन्दी पदार्थोंका भोजन तथा बिना समय कदापि भोजन नहीं खाना चाहिये, क्योंकि वह उसकी आयु और सुखके लिए हितकारक नहीं होता ॥ १५० ॥

आनद्धः स्तिमितैर्दोषैर्यावन्तं कालमातुरः । तावत्कालन्तु लघ्वन्नमश्नीयात्तु विरिक्तवत् ॥ १५१ ॥

जबतक ज्वररोगी दोषोंसे घिरा रहे तबतक उसको हलका अन्न विरिक्त (जुलाब लिए हुए) के समान देना उचित है ॥ १५१ ॥

सातत्यात्स्वाद्वभावाच्च पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् । कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ॥ १५२ ॥

बहुत दिनोंतक निरंतर सेवन करने और स्वादिष्ट न होनेसे पथ्य द्वेषभावको प्राप्त हो जाता है—अर्थात् उससे अरुचि हो जाती है तब उसको वैद्य अनेक प्रकारकी कल्पनाओंसे सुन्दर करें ॥१५२॥

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केसरं साज्यसैन्धवम् । धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत् ॥ १५३ ॥

इति तरुणज्वरविधिः ।

जो ज्वरमें अरुचि हो तो बिजौरे नींबूकी केशर को घी और सैंधे नोनमें मिलाकर अथवा आमले, दाख और मिश्री इनके कल्कको मुखमें धारण करे ॥ १५३ ॥

विनापि भेषजैर्व्याधिः पथ्यादेव निवर्त्तते । न तु पथ्यविहीनस्य भेषजानां शतैरपि ॥ १५४ ॥

केवल पथ्य सेवन करनेसे ही बिना औषधके भी रोग नष्ट हो जाते हैं किन्तु कुपथ्य सेवन करने वाले मनुष्यके सैकडों औषधियोंके सेवन करनेसे भी आरोग्य नहीं होते ॥ १५४ ॥

शालयो रक्तशाल्याद्याः शस्यन्ते षष्टिकादयः । यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहाः ॥ १५५ ॥

शालिधान, लाल शालिधान, षष्टिकधान (साठी) ये सब धान ओदन (भात), खीलें और यवागू बनानेके लिये लेवे । ओदन (भात) और खीलोंकी यवागू ये सब ज्वररोगियोंके ज्वरको हरनेवाले हैं ॥ १५५ ॥

मुद्गान्मसूरांश्चणकान्कुलित्थान्समकुष्ठकान् । यूषार्थे यूपसात्म्यानां ज्वरितानां प्रकल्पयेत् ॥ १५६ ॥

मूँग, मसूर, चने, कुलथी और मोठ ये यूपके लिए देने चाहिए।इनमेंसे जौनसा यूंष। ज्वररोगीको सात्म्य (माफिक) होवे वही उसको देना चाहिए॥१५६

पटोलपत्रं सफलं कुलकं कारवेल्लकम् । कर्कोटकं कठिल्लं च विद्याच्छाकं ज्वरे हितम् ॥ १५७ ॥

पटोलपत्र, पटोलफल, मीठे परवल, करेला, ककोडा और पुनर्नवा इनका शाक ज्वरमें हितकारी है ॥ १५७ ॥

लावान्कपिञ्जलानेणांश्चकोरानुपचक्रकान् । सकुरङ्गान्कालपुच्छान्हरिणान्पृषतान्छशान् । प्रदद्यान्मांससात्म्यानां ज्वरितानां ज्वरापहान्॥१५८॥

लवा, कपिंजल (तीतर),एण (काला हिरन), चकोर, चकवा, कुरंग, कालपुच्छ, पृषतमृग और शशक (खरगोस) इन जीवोंका मांस (मांस भोजी) ज्वररोगीको देना चाहिये । परन्तु जिस रोगीको जिस जीवका मांस सात्म्य (माफिक) हो वही उसको देना चाहिये,ये ज्वरको हरनेवाले हैं,जो मांस नहीं खाते उनके लिये यह विधि नहीं है ॥१५८॥

न कषायं प्रशंसन्ति नराणां तरुणज्वरे । कषायेनाकुलीभूता दोषा जेतुं सुदुस्तराः ॥ १५९ ॥

नवीन ज्वरवाले रोगियोंको क्वाथ नहीं देना चाहिये क्योंकि क्वाथसे दोष आकुलित हो जाते हैं फिर उनको जीतना अत्यन्त दुस्तर हो जाता है१५९

दोषा वृद्धाः कषायेण स्तम्भितास्तरुणज्वरे । स्तभ्यन्ते न विपच्यन्ते कुर्वन्ति विषमज्वरम् ॥ १६० ॥

नवीन ज्वरमें क्वाथके देनेसे दोष वृद्धिको प्राप्त होकर स्तम्भित हो जाते हैं, स्तम्भित दोष न पचते और न शमन होते हैं किन्तु विषम ज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ १६० ॥

न च्यवन्ते न पच्यन्ते कषायैस्तम्भिता मलाः । तिर्यग्विमार्गगाः स्थित्वा घोरं कुर्युर्नवज्वरम् ॥ १६१ ॥

क्वाथसे स्तम्भित हुए दोष न निकलते हैं और न पचते हैं किन्तु तिर्यग्गामी होकर घोर नवीन ज्वर को उत्पन्न करते हैं ॥ १६१ ॥

आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान् पिधापयन् । विदधाति ज्वरं घोरं तस्माल्लङ्घनमादिशेत् ॥ १६२ ॥

वातादिदोष आमाशयमें स्थित होकर आमके साथ मिलकर जठराग्निको नष्ट कर शरीरके स्रोत को रोक करके ज्वरको उत्पन्न करते हैं इसकारण आमको पचनेके लिये, जठराग्निको दीपन करनेके लिये और स्रोतोंको शुद्ध करनेके लिये ज्वरमें अवश्य लंघन कराने चाहिये ॥ १६२ ॥

लङ्घनेन क्षयं नीते दोषे संधुक्षितेऽनले।विज्वरत्वं लघुत्वं च क्षुच्चैवास्योपजायते ॥ १६३ ॥

लंघन करनेसे वातादि दोष क्षय होकर जठराग्नि दीपन होती है तथा ज्वरकी हीनता, लघुता और क्षुधा उत्पन्न होती है ॥ १६३ ॥

शरीरलाघवकरं यद्द्रव्यं कर्म्म वा पुनः । तल्लङ्घनमिति ज्ञेयं बृंहणं तु पृथग्विधम् ॥ १६४ ॥

जो द्रव्य या कर्म्म शरीरमें लघुता उत्पन्न करे उसको लंघन कहते हैं और बृंहण इसके पृथक् अर्थात् विपरीत है ॥ १६४ ॥

बलाविरोधेनाथैनं लङ्घनेनोपपादयेत् । बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थो हि क्रियाक्रमः ॥ १६५ ॥

वैद्यको चाहिये कि, इस प्रकार लंघन करावे जिससे रोगीके शरीरका बल नष्ट न हो, क्योंकि बलके अधीन आरोग्य है, जिस आरोग्यके लिये यह सब क्रियाकल्प कहा गया है ॥ १६५ ॥

तद्धि मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते। कार्यं न बाले वृद्धे वा गर्भिण्यां

न च दुर्बले। न तथाध्वश्रमक्रोधकाम-शोकभवे ज्वरे ॥ १६६ ॥

यह लंघन–वातरोगी, तृषासे पीडित, क्षुधासे पीडित, मुखशोषी, भ्रमरोग, बालक, वृद्ध, गर्भिणी स्त्री, दुर्बल मनुष्य और मार्गके चलनेसे थके हुए मनुष्यको तथा श्रम, क्रोध, काम और शोकसे उत्पन्न हुए ज्वरमें नहीं कराने चाहिए ॥ १६६ ॥

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सामे विशेषतः । वमनं वमनार्हस्य पथ्य-मित्याह वाग्भटः ॥ १६७ ॥

वाग्भटने कहा है कि भोजन करनेके पश्चात् तत्काल ज्वरके आ जाने पर विशेष कर आम ज्वरके होनेपर वमन कराने योग्य रोगीको वमन कराना हितकर है ॥ १६७ ॥

उत्तम लंघन होनेके लक्षण ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रला-घवे । हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्रा-क्लमे गते ॥ १६८ ॥ स्वेदे जाते रुचौ चैव क्षुत्पिपासासहोदये । कृतं लङ्घन-मादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि॥१६९॥

अपानवायु, मूत्र और मलका यथानियमसे निर्गत होना, देहमें हलकापन, हृदय, डकार, कंठ और मुख इनका शुद्ध होना, तन्द्रा और ग्लानिका न होना, पसीनोंका आना, रुचिका उत्पन्न होना, क्षुधा और तृषाका एक साथ लगना और आत्मामें किसी प्रकारकी पीड़ा न होना, ये सब लक्षण उत्तम लंघन होनेवाले रोगीके हैं ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

अत्यंत लंघन होनेके दोष ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च । क्षुत्प्रणाशो रुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥ १७० ॥ मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातः क्लमो हृदि । देहाग्निबलहानिश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ १७१ ॥

अत्यन्त लंघन करनेके दोष–शरीरकी सब सन्धियोंमें पीडा, शरीरमें हडफूटन, खाँसी, मुखशोष, क्षुधाका नाश, अरुचि और तृषा, कान और नेत्रोंमें दुर्बलता, मनमें बारम्वार भ्रमका होना, सदैव ऊर्ध्ववातके उपद्रवोंका होना, हृदयमें ग्लानिका होना, देह, जठराग्नि और बलका नाश होना; ये सब लक्षण अत्यन्त लंघन करनेसे होते हैं ॥ १७० ॥ १७१ ॥

ज्वरमें जलपानविधि ।

तृष्यतः सलिलं चोष्णं दद्याद्वातक-फज्वरे । तद्धि मार्दवकृद्दोषस्रोतसां शीतमन्यथा ॥ १७२ ॥

वात कफज्वरमें तृषा लगनेपर रोगीको उष्ण जल देना चाहिये, गरम जल दोषोंको शमन और शरीरके स्रोतोंको मृदु करनेवाला है। शीतल जल इससे विपरीत गुणोंवाला है ॥१७२॥

पित्तमद्यविषोत्थेषु पित्तकैः शृतशी-तलम् । मुस्तापर्पटकोशीरचन्दनोदी-च्यनागरैः । शृतं शीतं जलं दद्या-त्तृड्दाहज्वरशान्तये ॥ १७३ ॥

पित्तरोग, मद्यविकार और विषके उत्पन्न हुए रोगोंमें कडवी औषधियोंके द्वारा जलको औटाकर पश्चात् शीतल करके पीनेको देवे । नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, लालचन्दन, सुगन्धवाला और सोंठ इनको जलमें औटावे, जब औट चुके तब खूब शीतल करके छान लेवे. यह जल तृषा, दाह और ज्वरको शांत करनेके लिये देवे ॥ १७३ ॥

पादशेषः कषायः स्यात् प्रसाध्यः षोडशेऽम्भसि । कथितोऽतः षडङ्गा-दिर्न निषिद्धो नवज्वरे ॥ १७४ ॥

जिसमें क्वाथ द्रव्य सोलहगुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रक्खे औंय उसको कषाय कहते हैं । इसकारण षडङ्गादि जल तरुणज्वरमें निषिद्ध नहीं है ॥ १७४ ॥

ज्वरमें पेया देनेकी विधि ।

लङ्घिताय हिता पेया यथास्वं पाचनैः कृता । दीपनी पाचनी लघ्वी ज्वरार्तानां ज्वरापहा ॥ १७५ ॥

लंघन करनेवाले रोगीके लिये पेया अत्यन्त हितकारी है, वह यथादोषानुसार पाचन द्रव्योंसे बनाई हुई दीपन, पाचन, हलकी और ज्वररोगीके ज्वरको हरनेवाली है ॥१७५॥

लघुना पञ्चमूलेन पिप्पल्या सह धान्यया। महत्या पञ्चमूल्याथ व्याघ्री दुस्पर्शगोक्षुरैः॥ १७६ ॥ संसिद्धं भिषगाहारं प्रयुञ्जीत तथाक्रमम्। वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफवाते त्रिदोषजे ॥१७७॥

लघुपंचमूल-- (शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी और गोखरू) के द्वारा पेया बनाकर वातपित्तज्वरमें देवे। पीपल और धनियेके द्वारा बनाई पेया कफपित्तज्वरमें हितकारी है। बृहत्पंचमूल--(वेल, श्योनाक, कुम्भेर, पाढर, अरणी) के द्वारा सिद्ध की हुई पेया कफवातज्वरमें देवे कटेरी, जवासा और गोखुरू इनके क्वाथके द्वारा सिद्ध कियेहुए अन्नको त्रिदोषज्वरमें देवे ॥ १७६ ॥ ॥ १७७ ॥

वाते वा सकफे पित्ते सामे वा तरुणज्वरे। आद्यमण्डं प्रशंसन्ति पटोलमगधान्वितम् ॥ १७८ ॥

वातज्वर, कफज्वर अथवा पित्तज्वर, आमज्वर, किंवा तरुणज्वरमें प्रथम परवल और पीपलके द्वारा सिद्ध किया हुआ मंड देना अत्यन्त हितकारी है ॥ १७८ ॥

पेयां वा रक्तशालीनां बस्तिपार्श्वशिरोरुजि। श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरीं पिबेत् ॥ १७९ ॥

लाल शालिधानकी पेयाको बस्ति, पार्श्वरोग और शिरोरोगमें देवे। गोखरू और कटेरीके द्वारा सिद्ध की हुई पेया ज्वरमें देवे ॥ १७९ ॥

विबद्धवर्चाः सयवां पिप्पल्यामलकैः शृताम्। सर्पिष्मतीं पिबेत्पेयां ज्वरदोषानुलोमिनीम् ॥ १८० ॥

मलबद्धतामें-जौ, पीपल और आमलोंके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पान करे। ज्वर और वातादि दोषोंको अनुलोमन करनेके लिये पेयामें घी मिलाकर पीवे ॥ १८० ॥

कासे श्वासे च हिक्कायां पञ्चमूलीशृतां पिबेत् ॥ १८१ ॥

खाँसी, श्वास और हिकारोगमें पंचमूलके द्वारा सिद्ध की हुई पेया पीवे ॥ १८१ ॥

बलावृक्षाम्लकोलाम्लकलशीधावनीशृताम्। अस्वेदनिद्रातृष्णार्त्तः पिबेत्पेयां सशर्कराम् ॥ १८२ ॥

खिरेंटी, इंमली, बेर, आमले, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी इनकी पेया बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे पसीनेका न आना, निद्रा और तृषाकी पीडा दूर होती है ॥ १८२ ॥

क्लिन्नां यवागूं मन्दाग्निपिपासार्त्तान्न पाययेत्। मदात्यये मद्यनित्ये ग्रीष्मे पित्तकफोत्थिते। ऊर्ध्वगे रक्तपित्ते च यवागूर्न हिता ज्वरे ॥ १८३ ॥

मंदाग्नि और तृषातुर रोगीको यवागू नहीं देनी चाहिये तथा मदात्ययरोगी, सदैव मदिरा पीनेवाले मनुष्यको ग्रीष्मऋतु, पित्तकफोद्भवरोग, ऊर्ध्वगत रक्तपित्तरोग और ज्वररोगमें यवागू नहीं देनी चाहिये ॥ १८३ ॥

तत्र तर्पणमेवाग्रे देयं स्याल्लाजसक्तुभिः। ज्वरापहैः फलरसैर्युक्तं समधुशर्करैः ॥ १८४ ॥

ज्वरमें प्रथम खीलोंके सत्तुओंके साथ ज्वरनाशक फलोंका रस, शहद और मिश्री मिलाकर तर्पण दे ॥ १८४ ॥

स्याद्धितः साधितो यूपस्त्वष्टादशगुणे जले। शृतं पञ्चगुणे भक्तं विलेपी च चतुर्गुणे ॥ १८५ ॥ क्वाथ्यद्रव्याञ्जलिं क्षुण्णं श्रपयित्वा जलाढके। अर्धशृतेन तेनाथ यवाग्वाद्येव कल्पयेत् ॥ १८६ ॥

अठारह गुने जलमें सिद्ध किया हुआ यूप हितकारी है तथा भातको पाँचगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये और विलेपी चौगुने जलमें सिद्ध करना चाहिये। क्वाथ द्रव्य चार पल लेकर खूब कूटकर एक आढक जलमें पकावे, जब आधा भाग जल बाकी रह जाय तब उसको यवागू कल्पना करे ॥ १८५ ॥ १८६ ॥

वृद्धवैद्याः पलं द्रव्यं ग्राहयन्त्याढके जले। भेषजस्यातिबाहुल्यात् कदाचिदरुचिर्भवेत् ॥ १८७ ॥

वृद्धवैद्य एक पल द्रव्यको लेकर एक आढक जलमें पकाते हैं। कदाचित् औषधिकी बाहुल्यतासे अरुचि होजावे तो- ॥ १८७ ॥

तदप्सु शृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते । कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रस्थिकेऽम्भसि । अर्धशृतं प्रयोक्तव्यं पानपेयादिसंविधौ ॥ १८८ ॥

षडंगादिके द्वारा औटाकर स्वयं शीतल किया हुआ जल पीनेको देवे। एक कर्ष औषधि लेकर एक प्रस्थ जलमें पकावे, जब आधा जल बाकी रह जाय तब उसको पान पेयादिके काममें लावे ॥ १८८ ॥

कर्षार्धं पिप्पलीशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् । विनीय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापरान् ॥ १८९ ॥

पीपल और सोंठ आधा २ कर्ष और कल्क द्रव्य एक पल लेकर विधिपूर्वक एक प्रस्थजलमें पकावे ॥ १८९ ॥

यूषांश्च रसकांश्चैव कल्केनानेन साधयेत् । बिल्वप्रमाणो घृततैलभृष्टो यूषो रसो वाप्युपकल्पनीयः ॥ कषायपानपथ्यान्नैर्द्वादशाहेऽतिलङ्घिते । सर्पिर्दद्यात्कफे क्षीणे वातपित्तोत्तरे ज्वरे ॥ १९० ॥

फिर इस कल्कके साथ यूप और रसादि सब सिद्ध करे। यूप और रसादिको एक पल तेल अथवा घृतादिसे भूनना चाहिये, बारह दिन लंघन करनेके पश्चात् वातपित्तज्वरमें कफके क्षीण होनेपर काथ, पान और पथ्यादिके साथ घृत देना चाहिये ॥१९०॥

पक्केषु दोषेष्वमृतं तद्विषोपममन्यथा । दशाहात्परतो दाने ज्वरोपद्रववृद्धिकृत् ॥ १९१ ॥

घृत दस दिनके पश्चात् ज्वरकी पक्व अवस्थामें देनेसे अमृतके समान गुण करता है, अपक्व अवस्थामें विषके समान अवगुणोंको उत्पन्न करता है तथा ज्वरके उपद्रवोंको बढाता है ॥ १९१ ॥

बहुदोषस्य मन्दाग्नेः सप्तरात्रात्परे ज्वरे । लङ्घनाम्बुयवागूभिर्यदा दोषो न पच्यते ॥ १९२ ॥

यदि बहुत दोषवाले और मंदाग्निवाले रोगीके सात दिनके पश्चात् ज्वर रहै और उसमें लंघन, उष्ण जल तथा यवागू आदिके देनेसे भी दोष न पचे तो- ॥ १९२ ॥

तदा तं मुखवैरस्यतृष्णारोचकनाशनैः । ज्वरघ्नैः पाचनैर्हृद्यैः कषायैः समुपाचरेत् ॥ १९३ ॥

उसको मुखकी विरसता, तृषा, अरुचि और ज्वरनाशक तथा हृदयको हितकारी ऐसे काथरूपी जरन पाचन दे ॥ १९३ ॥

आमज्वरके लक्षण ।

लालाप्रसेकहृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः । निद्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ॥ १९४ ॥ क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः । आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ॥ १९५ ॥ भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो वर्धयति ज्वरम् । शोधनं शमनीयं वा करोति विषमज्वरम् ॥१९६॥

आमज्वरके लक्षण-मुखसे लारका गिरना, उबकाईका आना, हृदयमें ग्लानि, अरुचि, निद्राका अधिक आना, आलस्य, दोषोंका अच्छे प्रकारसे नहीं पचना, मुखमें विरसता, शरीरमें भारीपन, क्षुधाका नाश, बहुत पेशाबका आना, देहमें जडता और ज्वरका बलवान् होना ये सब आमज्वरके लक्षण हैं। आमज्वरमें औषध नहीं देना चाहिये, आमज्वरमें औषध देनेसे ज्वरकी वृद्धि करती है तथा शोधन और शमन औषध देनेसे विषमज्वरको उत्पन्न करता है ॥१९४॥ ॥ १९५ ॥ १९६ ॥

आमज्वरमें औषध देनेसे हानि ।

दापयेद्दोषहरणं मोहादामज्वरे तु यः । स सुप्तं कृष्णसर्पं वा कराग्रेण परामृशेत् ॥ १९७ ॥

जो आमज्वरमें मोहके वश होकर दोषनाशक औषध देता है, वह सोते हुए काले साँपको अपने हाथसे छूकर जगाता है ॥ १९७ ॥

पच्यमान ज्वरके लक्षण।

ज्वरवेगोऽधिका तृष्णा प्रलापश्वसनभ्रमाः। मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥ १९८ ॥

ज्वरका वेग अधिक हो, तृषा, प्रलाप, श्वास, भ्रम, मलमूत्रादिकी प्रवृत्ति और उबकाई हो तो पच्यमान ज्वरका लक्षण जानना चाहिये ॥ १९८॥

निरामज्वरके लक्षण।

क्षुत्क्षामता लघुत्वं च गात्राणां ज्वरमार्दवम्। दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम् ॥ १९९ ॥

अब निरामज्वरके लक्षण कहता हूँ-क्षुधाका लगना, शरीरमें लघुता, ज्वरका मंद होना, वातादि दोषोंकी प्रवृत्ति होना और उत्साह होना, ये निरामज्वरके लक्षण जानने ॥ १९९ ॥

ज्वरमें औषध देनेका समय।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च। पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ २०० ॥

जब ज्वर मंद होजाय, शरीर हलका होजाय, मल चलायमान होजाय तब दोषोंको पक्व जानकर औषध देवे ॥ २०० ॥

दोषप्रकृतिवैकृत्यादेतेषां पक्वलक्षणम्। पक्वोऽप्यनिर्हृतो दोषो देहे तिष्ठन्महात्ययम्। विषमं वा ज्वरं कुर्याद्बलव्यापदमेव वा ॥ २०१ ॥

वात, पित्त और कफ इन तीनों दोषोंकी प्रकृतिकी विकृति हो जाय तब पक्वके लक्षण जानने। जो दोष पक्व होगया हो, परंतु शरीरमेंसे न निकाला गया हो तो वह शरीरमें रहता हुआ अत्यंत हानि करता है या तो विषमज्वरको उत्पन्न करता है अथवा बलका नाश करता है ॥ २०१ ॥

ज्वर पचनेकी अवधि।

वातिकः सप्तरात्रेण दशरात्रेण पैत्तिकः। श्लैष्मिको द्वादशाहेन ज्वरः पाकं नियच्छति ॥ २०२ ॥

१ "दोषप्रवृत्तिरुत्साहो निरामज्वरलक्षणम्" इत्यपि पाठः।

वातज्वर सात दिनमें, पित्तज्वर दश दिनमें और श्लेष्मिक ज्वर बारहै दिनमें पचता है ॥ २०२॥

पैत्तिके वा ज्वरे देयमल्पकालसमुत्थिते। अचिरज्वरितस्यापि भेषजं दोषपाकतः ॥ २०३ ॥

अल्पकालके उत्पन्न हुए पित्तज्वरमें दशवें दिन औषधि देनी चाहिये और जो वही पित्तज्वर बहुत कालका उत्पन्न हुआ हो तो दोषोंके पचनेपर औषधि देनी चाहिये ॥ २०३ ॥

पाययेदातुरं सामं पाचनं सप्तमेऽहनि। शमनेनाथवा दृष्ट्वा निरामं समुपाचरेत् ॥ २०४ ॥

आमज्वरवाले रोगीको वैद्य सातवें दिन पाचन औषधि देवे और निरामज्वरवाले रोगीको तत्काल शमनीय औषधि देवे ॥ २०४ ॥

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः। न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ २०५ ॥

जिसने तत्काल जल पिया हो, जो लंघन करनेसे क्षीण होगया हो, अजीर्ण रोगी, जिसने तत्काल भोजन किया हो और प्याससे व्याकुल ऐसे मनुष्योंको कदापि संशोधन (वमन, विरेचन) औषधि नहीं देवे ॥ २०५ ॥

वातज्वरके लक्षण।

वेपथुर्विषमो वेगः कण्ठौष्ठपरिशोषणम्। निद्रानाशः क्षवस्तम्भो गात्राणां रौक्ष्यमेव च ॥ २०६ ॥ शिरोहृद्गात्ररुग्वक्त्रवैरस्यं गाढविट्कता। शूलाध्माने जृम्भणं च भवत्यनिलजे ज्वरे ॥ २०७ ॥

अब वातज्वरके लक्षण कहते हैं-कंप होना, ज्वरका विषम वेग, कंठ और होठोंका सूखना, निद्राका नाश, छींकका न आना, शरीरमें रूखापन, शिर, हृदय और शरीरमें पीड़ा, मुखमें विरसता, मलका गाढा होना, शूल और अफारेका होना तथा जम्भाईका आना ये सब लक्षण वातज्वरमें होते हैं ॥ २०६॥ २०७ ॥

वातज्वरपर साधारण पाचन।

नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम्। दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरितानां ज्वरापहम्॥ २०८॥

सोंठ, देवदारु, धनियाँ, कटेरी और बडी कटेरी इनका पाचन (क्वाथ) बनाकर ज्वरवाले रोगीको देवे तो ज्वर दूर होता है॥ २०८॥

हिमवद्विन्ध्यशैलाभ्यां प्रायो व्याप्ता वसुन्धरा। सौम्यासौम्यं हिमं हैममाग्नेयं वैन्ध्यमौषधम्॥ २०९॥

हिमालय और विंध्याचल पर्वतसे प्रायः सम्पूर्ण पृथ्वी व्याप्त है। हिमालय पर्वतपर उत्पन्न होने वाली औषधियाँ शीतल और सौम्य होती हैं एवं विंध्याचल पर्वतपर उत्पन्न होनेवाली औषधियाँ आग्नेय अर्थात् गरम और असौम्य होती हैं॥२०९॥

द्रव्याण्यभिनवान्येव प्रशस्तानि क्रियाविधौ। ऋते गुडघृतक्षौद्रधान्यकृष्णाविडङ्गतः॥ २१०॥

चिकित्साकर्ममें सम्पूर्ण द्रव्य नवीन ही लेने उत्तम होते हैं। परन्तु गुड, घी, शहद, पीपल और वायविडंग ये पुराने ही उत्तम होते हैं॥२१०॥

यत्र येन प्रधानेन द्रव्यं समनुगृह्यते। तत्संज्ञकः स वै योगो भवतीति विनिश्चयः॥ २११॥

जिस योगमें जो द्रव्य प्रधानरूपसे ग्रहण किया जाता है वह योग उसी द्रव्यके नामसे कहा जाता है ऐसा निश्चय है॥२११॥

मात्रोत्तमा पलेन स्यात् त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमा। जघन्या स्यात्पलार्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च॥ २१२॥

स्नेहक्वाथादि औषधियोंकी एक पलकी मात्रा उत्तम, तीन कर्षकी मात्रा मध्यम और दो कर्षकी मात्रा जघन्य होती है॥ २१२॥

[1] गुड, घी, शहद कर्षणमें पुराने लेने और बृंहणमें नवीन लेने चाहिये ऐसा शिष्ट सम्मत है।

क्वाथद्रव्यपले वारि द्विरष्टगुणमिष्यते। चतुर्भागावशिष्टं तु पेयं पलचतुष्टयम्॥ २१३॥

एक पल क्वाथकी औषधि लेकर सोलह गुने जलमें पकावे, जब चौथा भाग बाकी रह जाय तब उस चार पल क्वाथको पान करे॥ २१३॥

दीप्तानलं महाकायं पाययेद्ञ्जलिं जलम्। अन्ये त्वर्द्धं परित्यज्य प्रसृतिं तु चिकित्सकाः॥ २१४॥

जिन मनुष्योंकी जठराग्नि दीपन है, जिनका शरीर बडा और हृष्ट पुष्ट है उनको एक कुडव परिमाण क्वाथ देना चाहिये, परन्तु अन्य आचार्य कहते हैं कि उनको आधा कुडव परिमाण क्वाथ देना चाहिये॥२१४॥

क्वाथत्यागमनिच्छन्तस्त्वष्टभागावशेषितम्। पारम्पर्योपदेशेन वृद्धवैद्याः पलद्वयम्॥ २१५॥

किन्तु अरुचि होनेके कारण प्राचीन वैद्य क्वाथके भागको पचाकर अष्टावशेष अर्थात् आठवाँ भाग बाकी रखते हैं और उस दोपल क्वाथको पिलाते हैं॥२१५॥

औषधप्राशनमंत्र।

ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलादयः[2]। ऋषयः सौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु वः॥ २१६॥

ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, पृथ्वी, चन्द्रमा, सूर्य, वायु आदिदेवता, ऋषि, सम्पूर्ण औषधियाँ और भूतोंके समूह ये सब तुम्हारी रक्षा करें॥ २१६॥

रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा। सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते॥ २१७॥

जिस प्रकार ऋषियोंको रसायन, देवताओंको अमृत और नागोंके लिये सुधा है उसीप्रकार यह औषधि तुम्हारे लिये गुणकारी हो॥ २१७॥

[2] "अनला" इत्यपि पाठः।

अथौषधप्राशनविधि ।

तत्रोपविश्य विश्रान्तः प्रसन्नवदनेक्षणः । औषधान्हेमरजतमृद्भाजनपरिस्थितान् ॥ २१८ ॥ पिबेत्प्रसन्नहृदयः पीत्वा पात्रमधोमुखम् । निःक्षिप्याचम्य सलिलं ताम्बूलाद्युपयोजयेत् ॥ २१९ ॥

प्रसन्न हैं मुख और नेत्र जिसके ऐसे रोगीको आरामसे बैठावे । पश्चात् औषधिको सोना चाँदी या मिट्टीके वर्त्तनमें करके देवे । रोगी उसको पीकर वर्त्तनको उलटा करके गेर देवे, फिर जल लेकर कुल्ला करके मुखशुद्धिके लिये पान आदिको चावे ॥२१८॥ ॥२१९॥

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं हन्यात्तथामयमसंशयमाशु चैव । तद्बालवृद्धयुवतीमृदुभिश्च पीतं ग्लानिं परां समुपयाति बलक्षयं च ॥ २२० ॥

अन्नरहित औषधि अधिक वीर्य्यवाली होती है और वह निःसंदेह शीघ्र ही रोगको दूर करती है जो उसी अन्नरहित औषधिको बालक, वृद्ध, स्त्री और कोमल प्रकृतिवाले मनुष्य सेवन करें तो उनके ग्लानि उत्पन्न होकर बलका नाश होता है ॥२२०॥

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता । लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ २२१ ॥

वायुका अनुलोमगतिसे संचार होना, शरीरमें स्वस्थता, क्षुधा और तृषाका लगना, मनकी प्रसन्नता, इन्द्रियोंमें हलकापन और शुद्ध डकारका आना, ये औषधि जीर्ण होजानेके लक्षण हैं ॥ २२१ ॥

औषधशेषे भुक्तं पीतश्च तथौषधं स शेषान्ने । न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ २२२ ॥

जो मनुष्य प्रथम औषधिको पीकर पश्चात् उसके ऊपर भोजन करता है अथवा जो प्रथम भोजन कर पश्चात् उसके ऊपर औषधि पीता है वह औषधि उसके रोगको शमन नहीं करती, किन्तु अन्यान्य रोगोंको उत्पन्न करती है ॥२२२॥

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्यादन्नावृतं न च मुहुर्वदनान्निरेति । प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ २२३ ॥

परन्तु वृद्ध, बालक, भीरु (डरपोक) और स्त्री इनको भोजनसे पहिले सेवन कराई हुई औषधि शीघ्र पच जाती है और बलको भी नहीं घटाती तथा अन्नसे आवृत (आच्छादित) होनेके कारण वारंवार मुखसे भी नहीं निकलती है इस कारण उन मनुष्योंको भोजनसे पहले ही औषधि सेवन करानी चाहिये ॥ २२३ ॥

वातज्वरचिकित्सा ।

बिल्वादिः पञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिकज्वरे । पाचनं पिप्पलीमूलगुडूचीविश्वजोऽथवा ॥ २२४ ॥

बेल, श्योनाक, कुम्भेर, पाढर और अरणी इनका काथ बनाकर अथवा पीपरामूल, गिलोय और सोंठ इनका पाचन बनाकर वातज्वरमें दे ॥ २२४ ॥

न शोधयति यद्दोषान्समान्नोदीरयत्यपि । समीकरोति विषमांस्तत्संशमनमुच्यते ॥ २२५ ॥

जो बिगडे दोषोंको शुद्ध नहीं करे तथा समान दोषोंको बढावे नहीं और विषम दोषोंको समान करे उसको संशमन औषधि कहते हैं ॥ २२५ ॥

किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सस्थिराकलशीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः ॥ २२६ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय, सुगन्धबाला, कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखरू, पृश्निपर्णी, शालिपर्णी और सोंठ इनका काथ बनाकर पीनेसे वातज्वर दूर होता है ॥ २२६ ॥

पञ्चमूलीबलारास्नाकुलत्थैः सह पौष्करैः । पर्वभेदं शिरःकम्पं निहन्ति पवनज्वरम् ॥ २२७ ॥

पंचमूलकी सब औषधियें, खिरैटी, रायसन, कुलथी और पोहकरमूल इनका काथ बनाकर पान करनेसे सन्धियोंकी पीडा, शिरका काँपना और वातज्वर नष्ट होता है ॥२२७॥

पिप्पली शारिवा द्राक्षा बला चांशुमती तथा । एषोऽपि परमः सिद्धो वातज्वरविनाशनः ॥ २२८ ॥

पीपल, उसवा, दाख, खिरैटी और शालिपर्णी इनका काढा वातज्वरको अवश्य नष्ट करता है॥२२८॥

द्राक्षा गुडूची काश्मर्य त्रायमाणा सशारिवा । निष्क्राथ्य सगुडं काथं पिबेद्वातकृते ज्वरे ॥ २२९ ॥

दाख, गिलोय, कुम्भेर, धमार, त्रनपसा और उसवा इनके काढेमें गुड मिलाकर वातज्वरमें पीवे॥२२९॥

दर्भं बला गोक्षुरकं पिबेत्पादावशेषितम् । शर्कराघृतसंयुक्तं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ २३० ॥

डाभ, खिरैटी और गोखरू इनका चतुर्थांश शेष अर्थात् सेरभरका पावभर जल बाकी रखकर उसमें मिश्री और घी मिलाकर वातज्वरमें पानकरे॥२३०॥

शर्करादाडिमाभ्याश्च द्राक्षादाडिमयोस्तथा । वैरस्ये धारयेत् कल्कं गण्डूषञ्च तथा हितम् ॥ २३१ ॥

मिश्री और अनार अथवा दाख और अनार इनका कल्क बनाकर मुखमें गण्डूष (कुल्ला) धारण करनेसे मुखकी विरसता दूर होती है ॥ २३१ ॥

आमं पचेदनिलजे हितो नित्यं रसौदनः । मुद्गामलकयूषस्तु गाढविट्के विधीयते ॥ २३२ ॥

वातज्वरमें नित्य रसोदनका सेवन करना आमको पचाता है । वातज्वरमें यदि मलविबन्ध होवे तो मूँग और आमलोंका यूष देवे ॥ २३२ ॥

इति वातज्वरचिकित्सा ।

पित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तज्वरके लक्षण ।

तीक्ष्णोष्णदाहतृण्मूर्च्छामदास्यकटुताभ्रमाः । प्रलापो घ्राणकण्ठौष्ठमुखपाकोऽक्षिसाश्रुता ॥ २३३ ॥ शीताभिलाषिता पीतमलनेत्रनखत्वचः । पित्तोद्गारातिसारौ च पैत्तिकज्वरलक्षणम् ॥ २३४ ॥

ज्वरका अत्यंत तीक्ष्ण और उष्ण वेग, दाह, तृषा मूर्च्छा, मद, मुखमें कटुता, भ्रम, प्रलाप (बेतुकी बात तथा नासिका, कंठ, होठ और मुखका पाक, नेत्रोंमें आँसुओंका भर आना, शीतकी अभिलाषा, मल, नेत्र नख और त्वचा इनका पीला होना, पित्तकी डकार आना और पीला अतिसारका होना ये लक्षण पित्तज्वरके जानने चाहिए ॥२३३॥२३४ ॥

चिकित्सा ।

दाहवम्यर्दितं क्षामं निरन्नं तृष्णयान्वितम् । शर्करामधुसंयुक्तं पाययेल्लाजतर्पणम् ॥ २३५ ॥

दाह और वमनसे पीडित, कृश, क्षुधा और तृषासे पीडित ऐसे पित्तज्वरवालेको खीलोंके सत्तूमें मिश्री और सहत मिलाकर सेवन करावे ॥२३५ ॥

कलिङ्गं कट्फलं मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी । पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ २३६ ॥

इन्द्रजौ, कायफल, नागरमोथा, पाढ और कुटकी इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करे तो पित्तज्वर दूर हो ॥ २३६ ॥

शर्करामधुरो हन्ति कषायः पैत्तिकं ज्वरम् । चन्दनोशीरश्रीपर्णीपरूषकमधूकजः ॥ २३७ ॥

लालचन्दन, खस, कुम्भेर, फालसा और महुएकी छाल इनके काढेमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ २३७ ॥

गुडूचीपद्मरोध्राणां शारिवोत्पलयोस्तथा । शर्करामधुरो काथः पीतः पित्तज्वरापहः ॥ २३८ ॥

गिलोय, पद्माख, लोध, अनंतमूल और कमल या कमलगट्टेकी गिरी इनके काथमें मिश्री डालकर पान करनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २३८॥

दुरालभापर्पटकप्रियंगुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्। जलं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः२३९

धमासा, पित्तपापड़ा, मेंहदीके फूल, चिरायता, अडूसा और कुटकी इनके काथमें खाँड मिलाकर पीवे तो तृषा, रक्तपित्त और दाहसहित ज्वर दूर होता है ॥ २३९ ॥

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ता काथं सशम्याकफलं विदध्यात् । प्रलापमूर्च्छाभ्रमदाहमोहतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ॥ २४० ॥

दाख, हरड़, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, कुटकी और अमलतासका गूदा इनका काथ बनाकर पीनेसे प्रलाप, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, मोह, और तृषायुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४० ॥

पटोलयवधान्याकमधुकं मधुसंयुतम् । हन्ति पित्तज्वरं दाहं तृष्णाश्चैव प्रमाथिनीम् ॥ २४१ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ और मुलैठी इनके काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे पित्तज्वर, दाह और तृषा दूर होती है ॥ २४१ ॥

पटोलयवनिष्क्राथो मधुना मधुरीकृतः । तीव्रपित्तज्वरोन्मर्दी पानतृड्दाहनाशनः ॥ २४२ ॥

पटोपलत्र और इन्द्रजौ इनके काथमें शहद डालकर पीवे तो तीव्र पित्तज्वर, तृषा और दाह दूर होती है ॥ २४२ ॥

गुडूच्यामलकैर्युक्तः केवलो वापि पर्पटः । पित्तज्वरं हरेत्तूर्णं दाहशोषभ्रमान्वितम् ॥ २४३ ॥

गिलोय और आमलेका अथवा केवल पित्तपापड़ेका ही काथ पीनेसे दाह, मुखशोष और भ्रमयुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४३ ॥

रोध्रोत्पलामृतापद्मशारिवाणां सशर्करः । काथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटोद्भवः ॥ २४४ ॥

लोध, कमल, गिलोय, पद्माख और अनंतमूल इनके काथमें मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है। अथवा केवल पित्तपापड़ेका ही काथ पीनेसे पित्तज्वर दूर होता है ॥ २४४ ॥

पर्पटामृतधातृणां काथः पित्तज्वरं जयेत्द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्य्या अथवा पुनः ॥ २४५ ॥

पित्तपापड़ा, गिलोय और आमले इनका काथ पित्तज्वरको दूर करता है । अथवा दाख, अमलतास और कुम्भेरका काथ भी पित्तज्वरको दूर करता है ॥ २४५ ॥

एकः पर्पटकः श्रेष्ठः पित्तज्वरविनाशनः । किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोशीरनागरैः ॥ २४६ ॥

इकला पित्तपापड़ाही पित्तज्वरका नाश करनेके लिये उत्तम है । यदि उसमें लालचन्दन, खस और सोंठ मिलाकर दिया जावे तो क्या कहना है २४६॥

विश्वपर्पटकोशीरघनचन्दनसाधितम्। दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत ॥ २४७ ॥

सोंठ, पित्तपापड़ा, खस, नागरमोथा और लालचन्दन इनका काथ बनाकर खूब शीतल करके पान करे तो तृषा, वमन, ज्वर और दाह दूर होता है ॥ २४७ ॥

गुडूची मुस्तधान्याकं मधूकं कटुरोहिणी । तृष्णाशूलारुचिच्छर्दिपित्तज्वरहरो गणः ॥ २४८ ॥

गिलोय, नागरमोथा, धनियां, मुलैठी और कुटकी इन औषधियोंका समूह तृषा, शूल, अरुचि, वमन और पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २४८ ॥

किराततामृतधान्याकचन्दनोशीर-पर्पटैः । सपद्मकैः कृतः काथो हन्ति पित्तभवं ज्वरम् । दाहहल्लासमरुचि-मुत्क्लेशवमथुक्लमान् ॥ २४९ ॥

चिरायता, गिलोय, धनियां, लालचन्दन, खस, पित्तपापड़ा और पद्माख इनका काथ–पित्तज्वर, दाह, उबकाई, अरुचि, उत्क्लेश, वमन और क्लम(ग्लानि) को दूर करता है ॥ २४९ ॥

सासितो निशि पर्युषितः प्रातर्धान्याकतण्डुलक्काथः । पीतः शमयत्यचिरादन्तर्दाहं ज्वरं घोरम् ॥ २५० ॥

रात्रिमें धनियेके चावलोंको भिजो देवे । पश्चात् सुबहको काथ बनाकर मिश्री मिलाकर पीनेसे बहुत दिनोंकी भीतरी दाह और घोर ज्वर दूर होता है ॥ २५० ॥

चन्दनं मधुकं द्राक्षां कटुकां सदुरालभाम् । चन्दनादिगणः प्रोक्तो हन्याद्दाहज्वरारुचिम् ॥ २५१ ॥

लाल चन्दन, मुलैठी, दाख, कुटकी और जवासा इन सब औषधियोंको चन्दनादिगण कहते हैं, यह चन्दनादिगण दाह, ज्वर और अरुचिको नष्ट करता है ॥ २५१ ॥

मुद्गनामञ्जलीचूर्णं यष्टीमधुकसाधितम् । पाक्यं शीतकाषायं वा पिबेत्पित्तज्वरापहम् ॥ २५२ ॥

मूँगका चूर्ण १ कुड़व और मुलैठीका चूर्ण १ कुड़व; दोनों को मिलाकर काथ बनावे फिर शीतल हो जाने पर उसको छानकर पीनेसे अथवा उपर्युक्त चूर्णको रात्रिमें शीतल जलमें भिजाकर सवेरेको छानकर पीनेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५२ ॥

ह्रीबेरं धान्यकं मुस्तं चन्दनं मधुयष्टिका । वृषोशीरयुतः काथः शर्करामधुसंयुतः । रक्तपित्तं जयत्युग्रं तृष्णादाहज्वरापहः ॥ २५३ ॥

सुगन्धवाला, धनियाँ, नागरमोथा, चन्दन, मुलैठी, अडूसा और खस इनके काथमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करनेसे घोर रक्तपित्त, तृषा, दाह और ज्वर दूर होता है ॥ २५३ ॥

भूनिम्बातिविषालोध्रमुस्तकेन्द्रयवामृताः । वासकं नागरं बिल्वं कषायो माक्षिकान्वितः । श्वासं कासञ्च विड्भेदं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ २५४ ॥

चिरायता, अतीस, लोध, नागरमोथा, इंद्रजौ, गिलोय, अडूसा, सोंठ और बेलगिरी इनके काथमें शहद मिलाकर पान करनेसे श्वास, खाँसी, मलभेद और रक्तपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २५४ ॥

तिक्तावालकभूनिम्बश्यामापर्पटवासकैः । शृतं जलं सितायुक्तं रक्तपित्तज्वरं जयेत् ॥ २५५ ॥

कुटकी, सुगन्धवाला, चिरायता, अनंतमूल, पित्तपापड़ा और अडूसा इनके काथमें मिश्री मिलाकर पान करनेसे रक्तपित्तज्वर दूर होता है ॥ २५५ ॥

पथ्यां तैलघृतक्षौद्रैर्लिहेद्दाहज्वरापहाम् । कासासृक्पित्तवीसर्पश्वासान् हन्ति वमीनपि ॥ २५६ ॥

हरडको पिसकर तेल, घी और शहदके साथ मिला कर चाटनेसे दाह, ज्वर, खाँसी, रक्तपित्त, विसर्प, श्वास और वमन दूर होती है ॥ २५६ ॥

हर्म्ये शुभ्राभ्रसंकाशे शशांककरशीतले । मलयोदकसिक्ते वा सुप्यात्पित्तज्वरी नरः ॥ २५७ ॥

मनोहर और अत्यन्त निर्मल आकाशके समान स्वच्छ चन्द्रमाकी किरणोंसे शीतल और जिसमें चन्दनादिका जल छिड़का गया हो ऐसे घरमें पित्तज्वरवाला रोगी शयन करे ॥ २५७ ॥

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि च दापयेत् । केसरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ २५८ ॥

जो जिह्वा, तालु, गला, मुख, कंठ, क्लोम (पिपासास्थान) और मस्तक इन स्थानोंमें शोष हो, तो बिजौरे नींबूकी केसरको शहद और सैंधे नमकके साथ मिलाकर सेवन करावे ॥ २५८ ॥

हरीतकी प्रियङ्गुश्च पिप्पली लोध्रमेव च । दार्वी हरिद्रा तेजोह्वा सक्षौद्रसुखधावने ॥ २५९ ॥ एतेन कटुभावाच्च मुखरोगश्च शाम्यति । वक्त्रं विशदतामेति भक्तच्छन्दश्च जायते ॥ मुद्गयूषौदनौ देयः सितया पैत्तिके ज्वरे ॥२६०॥

हरड, फूलप्रियंगु, पीपल, लोध, दारुहलदी, हलदी और तेजबल इनको जलमें भिजोकर छान लेवे फिर शहदमें मिलाकर वारंवार कुल्ले करे, इस प्रकार मुख धोनेसे मुखकी कटुता और समस्त मुखरोग नष्ट होते हैं तथा मुखमें निर्मलता और अन्नमें रुचि उत्पन्न होती है । पित्तज्वरमें मूँगका यूष और भात खाँडके साथ मिलाकर सेवन करे ॥ २५९ ॥ २६० ॥

इति पित्तज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरचिकित्सा ।

कफज्वरलक्षण ।

कासश्वासप्रतिश्यायप्रसेकारुचिवछर्दयः । निद्रा गुरुत्वं हृल्लासः स्तैमित्यं मधुरास्यता ॥ २६१ ॥ शीतरोमाञ्चता शौक्ल्यं मलाक्षिकरजत्वचि । उष्णाभिलाषिता चेति श्लैष्मिकज्वरलक्षणम् ॥ २६२ ॥

खाँसी, श्वास, प्रतिश्याय (जुकाम) और परिषेक (नासिकामुखादिकसे पानीका गिरना), अरुचि, वमन, निद्रा और शरीरका भारी होना, उबकाई आना, भीजे कपडेसे ढके हुएके समान देहका होना, मुखमें मधुरता, शीतका लगना, रोमांच का होना, मल, नेत्र, नख और त्वचाका सफेद होना और उष्णता (गर्मी) की अभिलाषाका होना ये कफज्वरके लक्षण जानने ॥ २६१ ॥ २६२ ॥

मातुलुङ्गशिफाविश्वकायस्थाग्रन्थिकोद्भवम् । कफज्वरेषु सक्षारं पाचनं वा कणादिकम् ॥ २६३ ॥

बिजौरे नींबूकी जड, सोंठ, हरड और पीपलामूल इनके क्वाथमें जवाखार डालकर पीनेसे अथवा पिप्पल्यादि पाचन पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६३ ॥

त्रिफला त्रिवृता मुस्तं कटुकं सकलिङ्गकम् । पटोलारग्वधं चैव रोहिणी चित्रकं समम् । क्वाथः क्षौद्रयुतः श्लेष्मज्वरकासगलामये ॥ २६४ ॥

त्रिफला, निसोत, नागरमोथा, त्रिकुटा, इन्द्रजौ, पटोलपत्र, अमलतास, कुटकी और चीता इनके क्वाथमें शहद डालकर कफज्वर, खाँसी और गलरोग में पीवे ॥ २६४ ॥

निम्बविश्वामृताभीरुशठी भूनिम्बपौष्करम् । पिप्पली बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ॥ २६५ ॥

नीमकी छाल, सोंठ, गिलोय, शतावर, कचूर, चिरायता, पोहकरमूल, पीपल और बडी कटेरी इनका क्वाथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ २६५ ॥

कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलं वापि साधितम् । पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ २६६ ॥

कूठ, इन्द्रजौ, मूर्वा(चरनहार) और पटोलपत्र इनके क्वाथमें काली मिर्चोंका चूर्ण और शहद मिलाकर पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६६ ॥

त्रिफलापटोलवासाछिन्नरुहातिक्तरोहिणीपड्ग्रन्था । मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः ॥ मात्राक्षौद्रघृतादीनां क्वाथे स्नेहे सुचूर्णवत् ॥ २६७ ॥

त्रिफला, पटोल, अडूसा, गिलोय, कुटकी और वच इनके क्वाथमें शहद डालकर अथवा दशमूल और अडूसेके क्वाथमें शहद मिलाकर पीवे। क्वाथ और स्नेहोंमें शहद और घृतादिकी मात्रा चूर्णके समान जाननी ॥ २६७ ॥

सतच्छदं गुडूचीं च निम्बं स्फूर्जकमेव च । क्राथयित्वा पिबेत्तोयं सक्षौद्रं कफजे ज्वरे ॥ २६८ ॥

सतवन, गिलोय, नीमकी छाल और मैंद, इनका काथ बनाकर और उस काथमें शहद मिलाकर पीनेसे कफज्वर नष्ट होता है ॥ २६८ ॥

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः । सर्वज्वरकफातङ्के भेदी दीपनपाचनः ॥ २६९ ॥

आमले, हरड, पीपल और चीता, यह आमलक्यादिगण सर्वप्रकारके कफज्वरमें देना चाहिये।यह भेदन, दीपन और पाचन है ॥ २६९ ॥

तिक्तानिम्बविषाव्योषशक्राह्वाभिः शृतं जलम् । पिबेत्कफज्वरं घोरं हन्ति काससमान्वितम् ॥ २७० ॥

कुटकी, नीम, अतीस, त्रिकुटा और इन्द्रजौ इनका काथ पान करनेसे खांसी सहित घोर कफज्वर नष्ट होता है ॥ २७० ॥

सिन्धुवारदलकाथं कणाढ्यं कफजे ज्वरे । जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे च पिहिते पिबेत् ॥ २७१ ॥

सम्हालूके पत्तोंके काढेको पीपलका चूर्ण मिलाकर कफज्वर ,जंघाओंके बलकी क्षीणता और बधिरतामें पीवे ॥ २७१ ॥

मुस्तं मधुकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी । परूषकाणि निष्काथः कफज्वरविनाशनः ॥ २७२ ॥

नागरमोथा, महुएके बीज, त्रिफला, कुटकी और फालसेकी छाल, इनका काथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ २७२ ॥

चतुर्भद्रावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं कृष्णा शृङ्गी च मधुना सह । श्वासकासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥ २७३ ॥

कायफल, पोहकरमूल, पीपल और काकडाशृंगी इनका चूर्ण करके शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास, खाँसी, ज्वर और कफ दूर होता है ॥२७३॥

लिह्येज्ज्वरार्त्तस्त्रिफलां पिप्पलीं सममाक्षिकाम् । कासे श्वासे च मधुना सर्पिषा च युक्तां भवेत् ॥ २७४ ॥

कफज्वरवाला रोगी त्रिफला और पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तथा खाँसी और श्वासमें येही अवलेह शहद और घीमें मिलाके चाटे ॥ २७४ ॥

कट्फलं पौष्करं शृङ्गीं मुस्तकं कटुकं शठीम् । समस्तान्येकशो वापि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥२७५॥ आर्द्रकस्वरसक्षौद्रैर्लिह्यात्कफविनाशनम् । शूलानिलारुचिच्छर्दिकासश्वासक्षयापहम् ॥ २७६ ॥

कायफल,पोहकरमूल, काकडासिंगी, नागरमोथा, त्रिकुटा और कचूर इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करके उस चूर्णको अथवा एक २ के चूर्णको अदरखके रसमें और शहदमें मिलाकर चाटे तो कफ, शूल, बात, अरुचि, वमन, खाँसी और क्षयरोग दूर होता है ॥ २७५ ॥ २७६ ॥

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः श्वासकासज्वरापहः । प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानाञ्च प्रशस्यते ॥ २७७ ॥

पीपलके चूर्णको शहदमें मिलाकर चाटे तो श्वास, खाँसी, ज्वर, प्लीहा और हिचकी दूर होती है । यह बालकोंको अत्यन्त हितकारी है ॥ २७७ ॥

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानाञ्च सर्वशः । द्रवः शुक्त्यावलेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवैः ॥ २७८ ॥

चूर्ण, कल्क, गुटिका और वाटिकादिको एक एक तोलाप्रमाण प्रयोग करना चाहिये । लेहन करके सेवन करना हो तो द्रव पदार्थ (घृत, शहद आदि) दो तोले प्रमाण और पान करके सेवन करना हो तो द्रवपदार्थ चौगुने लेने चाहिये ॥ २७८ ॥

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निबलं वयः । व्याधिं द्रव्यश्च कोष्ठश्च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥ २७९ ॥

औषधिकी मात्राका कोई निश्चित नियम नहीं है किन्तु दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, औषधि और कोठा इन सबको अच्छे प्रकारसे देखकर औषधिकी मात्रा देवे ॥ २७९ ॥

अजाजीशर्करायुक्तो दाडिमीस्वरसेन तु । रुचिष्यो मधुना युक्तः कर्तव्यः कवलग्रहः॥ २८० ॥ मुद्गयूषौदनश्चापि देयः कफसमुत्थे ॥ २८१ ॥

जीरा, खाँड और अनारका स्वरस इनमें शहद मिलाकर मुखमें कवल धारण करे । यह रुचिकारक है । कफज्वरमें मूँगका यूष और भात देवे ॥२८०॥ ॥ २८१ ॥

इति कफज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

वातपित्तज्वरे देयमौषधं पञ्चमेऽहनि । पित्तश्लेष्मज्वरे देयमौषधं सप्तमेऽहनि ॥ २८२॥ अत ऊर्ध्वं च सप्ताहाद्वातश्लेष्मज्वरे पिबेत् ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरमें पाँचवें दिन औषधि देनी चाहिये, पित्तकफज्वरमें सातवें दिन औषधि देनी चाहिये । और वातकफज्वरमें नवमें दिन औषधि देवे ॥ २८२ ॥ ॥ २८३ ॥

वातपित्तज्वरके लक्षण ।

तृष्णा मूर्च्छा भ्रमो दाहः स्वप्ननाशः शिरोरुजा । कण्ठास्यशोषो वमथू रोमहर्षोऽरुचिस्तथा । पर्वभेदश्च जृम्भा च वातपित्तज्वराकृतिः ॥ २८४ ॥

अब वातपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं-तृषा, मूर्च्छा, भ्रम, दाह, निद्राका न आना, शिरमें पीडा, कंठ और मुखमें शोष, वमन, रोमांचोंका होना, अरुचि, सन्धियोंमें पीडा और जम्भाइयोंका आना ये सब लक्षण वातपित्तज्वरके जानने ॥ २८४ ॥

चिकित्सा ।

संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमथपाचनम् । निदिग्धिकाबलारास्नात्रायमाणामृतायुतैः । मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ २८५ ॥

द्वन्द्वज दोषोंमें मिश्रित अर्थात् उन २ दोषोंमें कही हुई औषधियोंको मिलाकर पाचन देवे । कटेरी, खिरेंटी, रायसन, त्रायमान, गिलोय और मसूरकी दाल इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको दूर करता है ॥ २८५ ॥

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः । शृतमम्बु हरत्याशु वातपित्तभवं ज्वरम् ॥ २८६ ॥

त्रिफला, सेमल, रायसन, अमलतास और अडूसा इनका क्वाथ वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २८६ ॥

किराततिक्तममृतां द्राक्षामामलकीं शटीम् । निष्क्वाथ्य पित्तानिलजे तं क्वाथं सगुडं पिबेत् ॥ २८७ ॥

चिरायता, गिलोय, दाख, आमले और कचूर इनके क्वाथमें गुड मिलाकर पीनेसे वातपित्तज्वर नष्ट होता है ॥ २८७ ॥

मधुकादिक्वाथ ।

मधुकं शारिवा द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् । काश्मरीफलकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ २८८ ॥ परूषकं मृणालञ्च न्यसेदुत्तमवारिणि । मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥ २८९ ॥ वातपित्तज्वरं दाहं तृष्णामूर्च्छारुचिभ्रमान् । शमयेद्रक्तपित्तञ्च जीमूतमिव मारुतः ॥ २९० ॥

मुलैठी, सरिवन, दाख, महुआ, लाल चन्दन, कमल, कुम्भेरका फल, लोध, त्रिफला, कमलकेशर, फालसे और कमलकी नाल इन सबको समानभाग लेकर स्वच्छ जलमें रातको भिजो देवे फिर प्रातःकाल छान कर शहद घोलैं और मिश्री मिलाकर पीनेसे यह वातपित्तज्वर, दाह, तृषा, मूर्च्छा, अरुचि, भ्रम और रक्तपित्तको नष्ट करता है, जिस प्रकार पवन बादलोंके समूहको नष्ट कर देता है॥ २८८॥२८९॥२९०॥

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः । कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोत्तरं ज्वरम् ॥ २९१ ॥

सोंठ, गिलोय, नागरमोथा, चिरायता और पंचमूलकी समस्त औषधियें, इन सबका क्वाथ बनाकर पीनेसे शीघ्र ही वातपित्तज्वर दूर होता है ॥२९१ ॥

बलाभार्ङ्गचमृतैरण्डचन्दनोशीरपर्पटैः। उपकुल्याब्दह्रीबेरैः कषायश्च पिबेत्ततः । पर्वभेदशिरःकम्पं वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ २९२ ॥

खिरैटी, भारंगी, गिलोय, अंडकी जड़, लाल चन्दन, खस, पित्तपापड़ा, पीपल, नागरमोथा और सुगंधबाला इनका काढा सन्धियोंकी पीड़ा, शिरका कांपना और वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ २९२ ॥

गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् । वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ २९३ ॥

गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता और सोंठ यह पंचभद्रनामक क्वाथ वातपित्तज्वरमें देना चाहिये ॥ २९३ ॥

नीलोत्पलमुशीराणि बला पद्मकमेव च । काश्मरी मधुकं द्राक्षा मधूकं सपरूषकम् ॥ २९४ ॥ पेयः शीतकषायोऽयं वातपित्तज्वरापहः । सप्रलापं समोहञ्च शमयेत्पैत्तिकं ज्वरम् ॥२९५॥

नीलकमल, नीलोफर, खस, खिरैटी, पद्माख, कुम्भेर, मुलैठी, दाख, महुआ और फालसे इनका हिम बनाकर पीवे तो यह वातपित्तज्वरको नष्ट करता है तथा प्रलाप और मोहयुक्त पित्तज्वर दूर होता है ॥२९४॥२९५॥

आरग्वधफलं मुस्तं यष्टीमधुकमेव च उशीरमभया चैव हरिद्रा दारुसाह्वया ॥ २९६ ॥ पटोलं पिचुमन्दश्च तथा कटुकरोहिणी । एभिः सिद्धः कषायः स्याद्वातपित्तभवे ज्वरे॥२९७॥

अमलतासका गूदा, नागरमोथा, मुलैठी, खस, हरड़, हल्दी, दारुहल्दी, पटोलपात, नीमकी छाल और कुटकी इनका क्वाथ वातपित्तज्वरमें हितकारी है ॥ २९६ ॥ २९७ ॥

कफपित्तहरा मुद्गाः कारवेल्लादयस्तथा । प्रायेण न तु ते देया वातपित्तोद्भवे ज्वरे । शूलोदावर्त्तविष्टम्भजनका ज्वरवर्धनाः ॥ २९८ ॥

मूँग, करेला आदि पदार्थ प्रायः कफपित्तनाशक हैं अतएव इनको वातपित्तज्वरमें नहीं देना चाहिये, क्योंकि इनको देनेसे शूल, उदावर्त और विष्टम्भ इनको उत्पन्न करते हैं तथा ज्वरको बढाते हैं ॥२९८॥

दाडिमामलमुद्गानां यूषस्त्वनिलपैत्तिके । मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तात्मके हितः ॥ २९९ ॥

अनार, आमले और मूँगका यूप वातपित्तज्वरमें देना चाहिये, मूँग और आमलोंका यूप भी वातपित्तज्वरमें हितकारी है ॥ २९९ ॥

महादाहे विधातव्यो यूषश्चणकसम्भवः ॥ ३०० ॥

जो वातपित्तज्वरमें अत्यंत दाह हो तो चनेका यूप देना चाहिये ॥ ३०० ॥

इति वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

पित्तकफज्वरके लक्षण ।

मुहुर्दाहो मुहुः शीतं स्वेदस्तम्भौ मुहुर्मुहुः । मोहः कासोऽरुचिस्तृष्णा श्लेष्मपित्तप्रवर्तनम् । लिप्ततिक्तास्यता तन्द्रा पित्तश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३०१ ॥

अब कफपित्तज्वरके लक्षण कहते हैं, वारंवार दाह हो, वारंवार शीत लगे, वारंवार पसीना आवे, वारंवार शरीर जकड़ जावे, बेहोशी हो, खाँसी, अरुचि, तृषा, कफ और पित्तका गिरना, मुख कफसे लिपासा रहे तथा पित्तसे मुखमें कड़वापन हो और तन्द्रा हो, ये पित्तकफज्वरके लक्षण हैं ॥ ३०१ ॥

चिकित्सा।

गुडूची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनान्वितम् । तृष्णादाहज्वरच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३०२ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्माख और लालचन्दन इनका क्वाथ तृषा, दाह, ज्वर, वमन और पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३०२ ॥

गुडूची निम्बधन्याकं पद्मकं चन्दनानि च । तृष्णादाहारुचिच्छर्दिसर्वज्वरहरो गणः ॥ ३०३ ॥

गिलोय, नीम, धनियाँ, पद्माख और लालचन्दन इन सब औषधियोंका क्वाथ तृषा, दाह, अरुचि, वमन और सर्व प्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ३०३ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं बला । साधितोऽयं कषायश्च पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३०४ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलैठी और खिरैटी इनका काढ़ा पित्तकफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३०४ ॥

दीपनं कफविच्छेदि पित्तवातानुलोमनम् । ज्वरघ्नं पाचनं भेदि सृष्टं धान्यपटोलयोः ॥ ३०५ ॥

धनियाँ और पटोलपातका क्वाथ–अग्निको दीपन करनेवाला, कफनाशक, पित्त और वातको अनुलोमन करनेवाला, ज्वरनाशक, पाचन और भेदक है ॥ ३०५ ॥

पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठामृता गणः । पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः ॥ ३०६ ॥

पटोलपत्र, चन्दन, मुरवहार, कुटकी, पाढ और गिलोय इनका क्वाथ पित्तकफज्वर, अरुचि, वमन, ज्वर और खुजली तथा विषका नाशक है ॥ ३०६ ॥

सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा । पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥ ३०७ ॥

एक तोला प्रमाण कुटकीके चूर्णको लेकर मिश्री मिलाकर गरम जलके साथ पान करे तो कफपित्तज ज्वर दूर होताहै ॥ ३०७ ॥

त्रिफला त्रायमाणा च मृद्वीका कटुरोहिणी । पित्तश्लेष्मज्वरे ह्येषां कषायो ह्यनुलोमनः ॥ ३०८ ॥

त्रिफला, त्रायमान, दाख और कुटकी इनका क्वाथ पित्तकफज्वरमें अनुलोमन करनेवाला है ३०८॥

वासकं पद्मकाष्ठञ्च नागरं चन्दनामृते । पटोलं धान्यकञ्चैव क्वाथो मधुसमायुतः । कफपित्तज्वरं शूलं दाहं हन्त्यंघ्रिपाणिषु ॥ ३०९ ॥

अडूसेकी छाल, पद्माख, सौंठ, लालचन्दन, गिलोय, पटोलपत्र और धनियाँ इनके क्वाथमें शहद मिलाकर पान करनेसे कफपित्तज्वर, शूल और हाथ पाँवोंकी दाह दूर होती है ॥ ३०९ ॥

पटोलं वालकञ्चैव मुस्तकं रक्तचन्दनम् । पाठा मूर्वामृता शुंठी चोशीरं कटुरोहिणी । समभागैः शृतं तोयं सर्वज्वरहरं पिबेत् ॥ ३१० ॥

पटोलपत्र, सुगन्धवाला, नागरमोथा, लाल चन्दन, पाढ, मूर्वा, गिलोय, सौंठ, खस और कुटकी इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर पीनेसे सर्व प्रकारके ज्वर नष्ट होते हैं ॥ ३१० ॥

सनागरं पर्पटकं पिबेद्वा सदुरालभम् । किराततिक्तकं मुस्तं गुडूचीं विश्वभेषजम् । पाठामुशीरं सोदीच्यं पिबेच्च ज्वरशान्तये ॥ ३११ ॥ ज्वरघ्नो दीपनश्चैव कषायो दोषपाचनः । तृष्णारुचिप्रशमनो मुखवैरस्यनाशनः ॥ ३१२ ॥

सोंठ और पित्तपापड़ा इनका काथ अथवा धमासा, चिरायता कड़वा, नागरमोथा, गिलोय, सोंठ, पाढ, रास और सुगन्धवाला, इनका काथ कफपित्तज्वरको शमन करनेके लिये पीवे। यह काथ ज्वरनाशक, दीपन, दोषपाचक, तृषा, अरुचि और मुखकी नीरसताको दूर करता है ॥ ३११ ॥ ३१२ ॥

यवं पर्पटकं धान्यं पटोलं निम्बसाधितम् । पिबेत्सशर्कराक्षौद्रं पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१३

इन्द्रजौ, पित्तपापड़ा, धानियाँ, पटोलपत्र और नीमकी छाल, इनके काथमें शहद और मिश्री मिलाकर पीवे तो पित्तकफज्वर नष्ट होता है॥३१३॥

अमृताष्टक

अमृतेन्द्रयवारिष्टं पटोलं कटुरोहिणी । नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । अमृताष्टकमित्येतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३१४ ॥

गिलोय, इन्द्रजौ, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, साठ, लाल चन्दन और नागरमोथा, इनके काथमें पपिलका चूर्ण डालकर पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है। इसको आमृताष्टक कहते हैं ॥ ३१४॥

कफपित्तवामिकण्डूज्वरवीसर्पदाहनुत् । कषायः परिपीतस्तु शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ३१५ ॥

अदरख और पटोलपत्रका काथ पान करनेसे कफ, पित्त, वमन, खुजली, ज्वर, विसर्प और दाह दूर होता है ॥ ३१५ ॥

कण्टकार्य्यादि ।

कण्टकार्य्यमृता भार्ङ्गी नागरेन्द्रयवासकम् । भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ ३१६॥ कषायं पाययेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् । दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृद्रोगशूलनुत् ॥ ३१७ ॥

कटेरी, गिलोय, भारंगी, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, चिरायता, चन्दन, नागरमोथा, पटोलपत्र और कुटकी. इनके काथको पान करनेसे पित्तकफज्वर नष्ट होता है तथा दाह, तृषा, अरुचि, वमन, खाँसी, हृदयरोग और शूल रोग दूर होता है ॥ ३१६ ॥ ३१७ ॥

पञ्चतिक्तक्काथ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपुष्करं चैव किराततिक्तम् पिबेत्कषायं त्वथ पञ्चतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधं समस्तम् ॥ ३१८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ, पोहकरमूल और चिरायता इनका काथ आठों प्रकारके ज्वरोंको नष्ट करता है ॥३१८ ॥

भाङ्गर्यादिगण।

भार्ङ्गी पुष्करमूलश्च मुस्तकं कण्टकारिका । त्रिकण्टकबृहत्यौ च कर्णिनीनागरैः शृतः॥३१९॥एप भाङ्गर्यादिको नाम्ना पित्तश्लेष्मज्वरापहः । हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहविबन्धनुत ३२०॥

भारंगी, पोहकरमूल, नागरमोथा, कटेरी, गोखरू, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, पृश्निपर्णी और सोंठ इन को भांर्ग्यादिक कहते हैं। यह भांर्ग्यादिगण पित्तकफज्वरनाशक तथा उपकाई, अरुचि, वमन, तृषा, दाह और विबन्धनाशक है ॥ ३१९ ॥ ३२० ॥

नागरेन्द्रयवं मुस्तं चन्दनं कटुरोहिणी । पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कषायन्तु पिबेन्नरः। भ्रममूर्च्छारुचिच्छर्दिपित्तश्लेष्मज्वरापहः ॥ ३२१ ॥

सोंठ, इन्द्रजौ, नागरमोथा, लाल चन्दन और कुटकी इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करनेसे भ्रम, मूर्च्छा, अरुचि, वमन और पित्तकफज्वर नष्ट होता ह ॥ ३२१ ॥

द्राक्षा शम्याकधान्याकं कटुका मुस्तग्रंथिकम् । काथं हन्यादुदावर्त्तं शूलं पित्तकफज्वरम् ॥ ३२२ ॥

दारु, अमलतास, धनियाँ, कुटकी, नागरमोथा और पीपलामूल इनका क्वाथ उदावर्त, शूल और पित्त-कफज्वरको नष्ट करता है ॥ ३२२ ॥

पटोलयवधान्याकमुद्गामलकचन्दनम्। पैत्तिके श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे तृट्छर्दिदाहनुत् ॥ ३२३ ॥

पटोलपत्र, इन्द्रजौ, धनियाँ, मूँग, आमले और लालचन्दन इनके क्वाथको पित्तज्वर और कफपित्तज्वरमें पीनेसे तृषा, वमन और दाह दूर होती है ॥३२३॥

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः। कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रक्पित्तं सकामलम् ॥ ३२४ ॥

पत्ते और फूल सहित अडूसेका रस निकाल कर पश्चात् उसमें मिश्री और शहद मिलाकर पान करे तो कफ—पित्त—ज्वर, रक्तपित्त और कामला रोग दूर होता है ॥ ३२४ ॥

पटोलं पिचुमन्दश्च त्रिफला मधुकं यवाः। साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मभवे ज्वरे ॥ ३२५ ॥

पटोलपात, नीमकी छाल, त्रिफला, मुलेठी और इन्द्रजौ इनका क्वाथ पित्त कफज्वरमें देना चाहिये ॥ ३२५ ॥

मुस्तपर्पटकैरातानिर्यूहेण प्रसाधितः। कफपित्तज्वरहरो यूषो धान्यपटोलयोः ॥ ३२६ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा और चिरायता, इनका सिद्ध किया हुआ निर्यूह अथवा धनियाँ और पटोलपत्रका यूष कफपित्तज्वरनाशक है ॥ ३२६ ॥

निम्बकोलकयूषस्तु हितः पित्तकफात्मके ॥ ३२७ ॥

नीमकी छाल और पटोलपत्र इनका यूष भी पित्त-कफज्वरमें हितकारी है ॥ ३२७ ॥

इति पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा।

वातकफज्वरचिकित्सा।

वातकफज्वरलक्षण।

स्तैमित्यं पर्वणां भेदो निद्रा गौरवमेव च। शिरोग्रहः प्रतिश्यायः कासः कम्पोऽरुचिस्तथा। सन्तापो मध्यवेगश्च वातश्लेष्मज्वराकृतिः ॥ ३२७ ॥

शरीर गीले कपड़ेसे ढकासा मालूम हो, संधियों पीडा हो, निद्रा अधिक आवे, देहमें भारीपन, शिर पीड़ा, जुकाम, खाँसी, कम्प, अन्नमें अरुचि, संताप और ज्वरका वेग मध्यम हो, ये वातकफज्वरके लक्षण जानने ॥ ३२७ ॥

चिकित्सा।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वयैः कृतः कषायः कफमारुतोत्तरे। सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्करे ज्वरे त्रिदोषप्रभवेऽपि शस्यते ॥ ३२८ ॥

कटेरी, गिलोय, सोंठ और पोहकरमूल, इनका क्वाथ बनाकर कफवातज्वरमें पीवे इससे श्वास, खाँसी, अरुचि, पसलियोंकी पीडा और त्रिदोषजनित ज्वर भी दूर होता है ॥ ३२८ ॥

मुस्तापर्पटकं शुण्ठी गुडूची सदुरालभा। कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहः ॥ ३२९ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, सोंठ, गिलोय और धमासा, इनका क्वाथ वातकफ, अरुचि, वमन, दाह शोष और ज्वरको दूर करता है ॥ ३२९ ॥

मातुलुङ्गफलकेसरोद्धृतः सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे। हन्ति वातकफरोगमास्यगं शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ ३३० ॥

बिजौरे नींबूकी केशर, सैंधानोन और मिरच, इनको एकत्र पीसकर मुखमें धारण करनेसे, वातकफजन्य मुखशोष, मुखकी जड़ता, विरसता और अरुचि शीघ्र दूर होती है ॥ ३३० ॥

आरग्वधग्रन्थिकमुस्तातिक्ताहरीतकीभिः क्वथितः कषायः। सामे सशूले कफवातयुक्ते ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ ३३१ ॥

अमलतास, पीपलामूल, नागरमोथा, कुटकी और हरड़ इनका काथ-आमशूल और कफवातयुक्त ज्वरमें हितकारक है तथा दीपन और पाचन है ॥ ३३१ ॥

आरोग्यपञ्चक।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः। दीपनीयः शृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥ ३३२ ॥

पीपल, पीपलामूल, चव्य, चीता और सोंठ इनका काथ दीपन और कफवातके रोगोंका नाशक है ॥ ३३२ ॥

चातुर्भद्रक।

किराततिक्तं मुस्तं च गुडूचीं विश्वभेषजम्। चातुर्भद्रकमित्याहुर्वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥ ३३३ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनको चातुर्भद्रक कहते हैं। यह वातकफके ज्वरको नष्ट करता है ॥ ३३३ ॥

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम्। वातश्लेष्मविकारघ्नं ज्वरघ्नं प्लीहनाशनम् ॥ ३३४ ॥

पीपलका काथ-अनभिष्यन्दी, दीपन, वातकफके विकारका नाशक, ज्वरनाशक और प्लीहाको नष्ट करता है ॥ ३३४ ॥

निम्बामृता विश्वदारु कट्फलं कटुकी वचा। कषायं पाययेदाशु वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥३३५ ॥ पर्वभेदः शिरःशूलकासारोचकपीडितम् ॥ ३३६ ॥

नीमकी छाल, गिलोय, सोंठ, देवदारु कायफल, कुटकी और वच इनका काढ़ा वातकफज्वर, सन्धियोंकी पीड़ा, शिरःशूल, खाँसी और अरुचि इनसे पीडित मनुष्यको पिलावे ॥ ३३५ ॥ ३३६ ॥

दारुपर्पटभार्ङ्ग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः। साभयाविश्वपूतीकैः कार्थो हिंगुमधूत्कटः ॥३३७॥ कफवातज्वरे पीतो हिक्काशोषगलग्रहान्। श्वासकासप्रमेहांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः॥३३८ ॥

देवदारु, पित्तपापड़ा, भारंगी, नागरमोथा, वच, धनियाँ, कायफल, हरड़, सोंठ और दुर्गन्धकरंज इनके काथमें हींग और शहद डालकर पीवे तो कफवातज्वरमें पिया हुआ हिक्का, शोष, गलग्रह, श्वास, खाँसी और प्रमेह इनने उपद्रवोंको नष्ट करता है जैसे वृक्षको वज्र नष्ट कर देता है ॥ ३३७ ॥ ३३८ ॥

दशमूलीरसः पीतः कणाढ्यश्च कफानिले। अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥ ३३९ ॥

कफवातज्वरमें दशमूलके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पीनेसे ज्वर, अजीर्ण, अतिनिद्रा, पसलीकी पीड़ा, श्वास और खाँसी दूर होती है ॥ ३३९ ॥

दशमूल।

पर्ण्यौ बृहत्यौ गोकण्टो बिल्वोऽग्निमन्थोऽरलुः। काश्मरी पाटला चेति सन्निपातहरो गणः ॥ ३४० ॥

शालिपर्णी, पृश्निपर्णी, कटेरी, बड़ी कटेरी, गोखुरू, बेलगिरी अरणी, श्योनाक, कुम्भेर और पाढल इन औषधियोंके समूहको दशमूल कहते हैं, यह दशमूल सन्निपातनाशक है ॥ ३४० ॥

तृष्णान्विते वातकफातिशूले सश्वासकासारुचिबद्धविट्के। हितं जलं दीपनपाचनश्च पटोलशुण्ठीयवपिप्पलीनाम् ॥ ३४१ ॥

पटोलपत्र, सोंठ, इन्द्रजौ और पीपल, इनका काथ तृषायुक्त वात-कफरोग, शूल, श्वास, खाँसी, अरुचि और मलबद्धता इनमें हितकारक, दीपन और पाचन है ॥ ३४१ ॥

पीनसश्वासबाधिर्य्ये जङ्घापर्वास्थिशूलिनि। कफवातज्वरे ... विधानकित ॥ ३४२ ॥

पीनसरोग, श्वास, वधिरता, जंघा, संधि और अस्थिशूलमें तथा कफवातज्वरमें विधि जाननेवाला स्वेद कर्म करावे ॥ ३४२ ॥

वालुकास्वेद ।

खर्परभृष्टपटास्थितकाञ्जिकसंसिक्तवालुकास्वेदः। शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभंगादीन् ॥ ३४३ ॥

एक खीपड़ेमें वालूको भरकर उसको खूब गरम करके रोगीके समीप धरे और रोगीको वस्त्रसे ढक देवे । पश्चात् वालूके ऊपर काँजीके छींटे देदेकर पसीना निकाले । यह वालुकास्वेद-वातकफके रोग, शिरकी पीड़ा और सब शरीरकी पीड़ाको शांत करता है अथवा वालूको खीपडेमें खूब तपाकर पश्चात् उसकी कपड़ेमें पोटली वनाकर उस पोटली को काँजीमें भिजोकर स्वेद देवे, इसको भी वालूका स्वेद कहते हैं ॥ ३४३ ॥

स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् । हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदोज्वरमपोहति ॥ ३४४ ॥

वालुकास्वेद-शरीरके स्रोतोंको मृदु अर्थात् शुद्ध करता है, अग्न्याशयको यथास्थानमें स्थापित करता है, वातकफकी स्तम्भताको और ज्वरको दूर करता है ॥ ३४४ ॥

पुष्करमूलयूपस्तु वातश्लेमादिके हितः।

वातकफज्वरमें पोहकरमूलका यूप हितकारक है ।

इति वातकफज्वरचिकित्सा ।

सन्निपातचिकित्सा ।

सन्निपातनिदान ।

वैरोधिकैरन्नपानैरजीर्णाध्यशनेन च । व्यामिश्रसेवनाच्चापि सन्निपातः प्रकुप्यति ॥ ३४५ ॥

विरुद्ध (समयविरुद्ध, संयोगविरुद्ध, स्वभावदेशविरुद्ध) ऐसे अन्न और पानको सेवन करनेसे, अजीर्णमें भोजन करनेसे अथवा भोजन पर भोजन करनेसे या विना समय भोजन करनेसे और अनेक प्रकारके मिश्रित पदार्थोंके सेवन करनेसे सन्निपात कुपित होते हैं ॥ ३४५ ॥

अव सन्निपातके लक्षण कहतेहैं ।

क्षणे दाहः क्षणे शीतमस्थिसन्धिशिरोरुजा। संस्रावे कलुषे रक्ते निर्भुग्ने चापि लोचने॥३४६॥ सस्वनौ सरुजौ कर्णौ कण्ठः शूकैरिवावृतः । तन्द्रा मोहः प्रलापश्च कासः श्वासोऽरुचिर्भ्रमः ॥३४७॥ परिदग्धा खरस्पर्शा जिह्वा स्रस्तांगता परम् । ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य कफेनोन्मिश्रितस्य च ॥३४८॥ शिरसो लोठनं तृष्णा निद्रानाशो हृदि व्यथा । स्वेदमूत्रपुरीषाणां चिराद्दर्शनमल्पशः ॥ ३४९ ॥ कृशत्वं नातिगात्राणां सततं कण्ठकूजनम् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥ ३५० ॥ मूकत्वं स्रोतसां पाको गुरुत्वमुदरस्य च । चिरात्पाकश्च दोषाणां सन्निपात ज्वराकृतिः ॥३५१॥

क्षणमें दाह हो, क्षणमें शीत लगे, हड्डी, संधि (जोड) और शिरमें पीड़ा हो, नेत्र आँसुयुक्त कलुषित (गँदले), लाल और टेढे हों, कानोंमें शब्द और पीड़ा हो, कंठ काटोंसे घिरा हुआ हो, तन्द्रा (ऊँघना), मोह (वेहोशी), प्रलाप (वृथा वकवाद), खाँसी, श्वास, अरुचि और भ्रम हो, जीभ अग्निसे जलीहुई सी मालूम हो तथा खरखरी हो, सम्पूर्ण अंग शिथिल हो जायँ, कफ मिले हुए रक्त और पित्तको थूके, शिरको इधर उधर लुढकावे, तृषा हो, निद्रा न आवे, हृदयमें पीड़ा, पसीना, मूत्र और मल ये वहुत कालमें थोड़े २ निकलें, शरीर अत्यन्त कृश (दुवला) न हो, निरन्तर कंठ बोले, शरीरमें काले, पीले और लाल मिले रङ्गके गोल २ चकत्ते पड जायँ, मूकता (गूगापन) हो, कान नासिकादि शरीरके स्रोतोंका पकना, उदरमें भारीपन और वातादि दोषोंका वहुत कालमें पकना ये सब सन्निपातज्वरके लक्षण जानने चाहिये ॥ ३४६ ॥ ३४७ ॥ ३४८ ॥ ३४९ ॥ ३५० ॥ ३५१ ॥

दोषे विवद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः । सान्निपातज्वरो साध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा ॥ ३५२ ॥

जिसमें सर्वदोष वढे हुए हों, जठराग्नि नष्ट हो ई हो और सम्पूर्ण लक्षण मिलते हों वह सन्निपात र असाध्य है–और इससे अन्यथा अर्थात् दोष वढे हों, अग्नि कुछ दीपन हो और थोडे लक्षण हों तो है कृच्छ्रसाध्य है ३५२ ॥

वातपित्ताधिक वभ्रु सन्निपात ज्वरके लक्षण।

वातपित्ताधिको यस्य सान्निपातश्च कुप्यति । तस्य ज्वरो मदस्तृष्णामुखशोषप्रमीलिकाः । आध्मानारुचितन्द्राश्च कासश्वासभ्रमक्लमाः । मुनिभिर्वभ्रुनामायं सन्निपात उदाहृतः ३५३ ॥

जिसके वातपित्ताधिक सन्निपात कुपित होता है स मनुष्यके ज्वर, मद (बेहोशी), तृषा, मुखशोष, नेत्रोंका मिचना, अफारा, अरुचि, तन्द्रा, खांसी, श्वास, भ्रम और क्लम(ग्लानि) ये सब लक्षण होते हैं। इसको मुनियोंने वभ्रुसान्निपात कहा है ॥३५३॥

पित्तकफाधिकसान्निपातके लक्षण।

पित्तश्लेष्माधिको यस्य सान्निपातः प्रकुप्यति। अन्तर्दाहो बहिः शीतं तस्य तृष्णा प्रवर्द्धते ॥ ३५४ ॥ तुद्यते दक्षिणं पार्श्वं मुखशोषगलग्रहाः । ष्ठीवति रक्तपित्तं च कृच्छ्रात्कण्ठश्च कूयते ॥३५५॥ विड्भेदश्वासहिक्काश्च वर्द्धन्ते सप्रमीलिकाः । विधुः फल्गुश्च तौ नाम्ना सन्निपातावुदाहृतौ ॥३५६॥

जिस मनुष्यके पित्तकफाधिक सन्निपात कुपित होता है उसके शरीरके भीतर दाह हो और वाहरसे शीत लगे, तृषा बढ जावे, दहनी पसलीमें पीडा हो, मुखशोष, गला रुक जाय, रुधिर मिला पित्त थूके, कठिनतासे कंठसे बोला जाय, दस्त होने लगें, श्वास हो, हिचकी आवे और नेत्र मिचेसे जावें इनको विद्वानोंने विधु और फल्गु नामक सन्निपात कहा है अर्थात् पूर्वोक्त वभ्रुनामक सान्निपातका नाम विधु और पित्तकफाधिक सन्निपातका नाम फल्गु कहा है ॥३५४ ॥ ३५५ ॥ ३५६ ॥

कफवाताधिक शीघ्रकारी सन्निपातके लक्षण।

श्लेष्मानिलाधिको यस्य सन्निपातः प्रकुप्यति। तस्य शीतज्वरो मूर्च्छा क्षुत्तृष्णा पार्श्वसंग्रहः ॥३५७॥ शूलमस्विद्यमानस्य हिक्का श्वासश्च जायते। असाध्यः सन्निपातोऽयं शीघ्रकारीति कथ्यते ॥ नहि जीवत्यहोरात्रमनेनाविष्टविग्रहः ॥ ३५८ ॥

जिस मनुष्यके कफवाताधिक सन्निपात कुपित होता है उसके शीतज्वर, मूर्च्छा, तृषा क्षुधा और पसलियोंमें पीडा, शूल, पसीनेका न आना, हिचकी और श्वासका अधिक वढना, ये सब लक्षण असाध्य हैं, इसको शीघ्रकारी सन्निपात कहते हैं इस सन्निपातवाला रोगी एक दिनरात भी नहीं जीता ॥ ३५७ ॥ ३५८ ॥

वातोल्वण विस्फोरकसन्निपातके लक्षण।

कासः श्वासस्तमो मूर्च्छा प्रलापो मोहवेपथू । पार्श्वयोर्वेदना जृम्भा कषायत्वं मुखस्य च । वातोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत॥३५९॥ एष विस्फोरको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः॥

खाँसी, श्वास, अंधकारदर्शन, मूर्च्छा, प्रलाप, मोह, कम्प, पसलियोंमें पीडा, जम्भाईका अधिक आना आर मुखमें कसैलापन, ये सब लक्षण जिसमें हों उसको वातोल्वण दारुण विस्फोरक सन्निपात जानना ॥ ३५९ ॥

पित्तोल्वण आशुकारी सन्नि०के लक्षण।

अतिसारो भ्रमो मूर्च्छा मुखपाकस्तथैव च। गात्रे च बिन्दवो रक्ता दाह-

स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत् । भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अतिसार (दस्तहों), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पकना, शरीरमें लालबिंदुओंका पड़ना और तीव्र दाहका होना ये लक्षण जिसमें हों ,उसको पित्तोल्वण आशुकारी सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोल्वण कंपनसन्निपातके लक्षण ।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि । प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च॥३६२॥ कफोत्तरस्य रूपाणि सान्निपातस्य लक्षयेत् । मुनिभिस्सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जड़ता, गद्गद बोलना, रात्रिमें नींद आना, नेत्रोंकी टकटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता, ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोल्वण कंपन सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यपित्त और अधिककफ वैदारिक सन्निपातके लक्षण ।

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातपित्तकफैः क्रमात् सान्निपातः प्रभवति पीडयन्दोपदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः । भृशं क्लमः शिरोवक्त्रमन्याहृदयवाग्रुजः ॥ ॥ ३६५॥ प्रमीलिकाः श्वासहिक्काकासजाड्यविसंज्ञताः । प्रथमोत्पन्नमेतत्तु साधयेत्तु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मिन्सन्निपाते तु कर्णमूले सुदारुणा । पिटिका जायते जन्तुर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥ ३६७ ॥ स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः । त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यपित्त और अधिक कफके कोपसे सन्निपात होता है, उसके उन्हीं दोषोंके क्रमसे पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं अर्थात् उसमें वातजन्य उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफजन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, जैसे कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण जानने । मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यपित्तके लक्षण जानने तथा अत्यंत ग्लानि यह अधिक कफका लक्षण है इत्यादि । एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और जिह्वामें पीड़ा हो, नेत्र मिचेसे जावें, श्वास, हिचकी, खाँसी, जड़ता हो, बेहोशी होवे।इसके उत्पन्न होतेही यदि चिकित्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय पश्चात् नहीं. इस सन्निपातमें कानकी जड़में दारुण सूजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े दुःखसे जीता है । इस दारुणसन्निपातको वैदारिक कहते हैं, तीन रात्रिके पश्चात् इसकी औषधि करनी वृथा है ॥३६४॥३६५॥३६६॥३६७॥३६८॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ-कर्कोटक सन्निपातके लक्षण ।

मध्यहीनाधिकैर्यस्य सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते । रक्तमालककैनैव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥ ॥ ३७० ॥ यत्नेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते । इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमीलिकाश्वासहिक्का वर्धन्ते तु दिने दिने जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजते च कपोतवत् । अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रोष्ठतालुकः ॥ ॥ ३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगार्त्तो हतवाह्निर्हतद्युतिः । न चाति भजते ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥३७४॥ आयम्यते च बहुशः सरक्तं ष्ठीवते-

ऽल्पशः । एष कर्कोटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे सन्निपात होता है उसके उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर दाह होना, बोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके रंगके समान लाल होना, बलपूर्वक आकर्षित किया हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलियोंमें तीर चुभनेकीसी पीडा, हृदयमें खोदनेके समान पीडा, नेत्र मिचेसे जायँ, श्वास और हिचकी, दिन प्रतिदिन बढ़ते जायँ, जीभ जलीहुईसी और खरखरी हो, कंठमें कांटे पड जायँ, बेहोशीमें मल मूत्रको त्याग देवे, अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ कबूतरके समान कूंजे, मुख, ओष्ठ और तालु सूख जायँ, तन्द्रा और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरीरकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि न हो, विपरीत चेष्टा करे और थोड़ा २ रुधिर मिला थूके, ये दारुणसन्निपात ' कर्कोटक ' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६९ ॥ ॥३७०॥३७१॥३७२॥३७३॥३७४॥३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफसंमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एकपक्षाभिघातस्तु तत्राप्येतद्विशेषतः । एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे अधिक, मध्य और हीनरोग होते हैं । प्रलाप, श्रम, बेहोशी, कम्प, मूर्च्छा, चित्तका कहीं न लगना, भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको ' संमोहक ' कहते हैं ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफोल्बण सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्यैस्तु सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रफुफ्फुसाः । पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणितनिर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन, अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन, यकृत्, प्लीहा, आँतें और फेफड़ा यह पक जाते हैं, ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राध और रुधिर निकलता है ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफजन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः । तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः ॥३८० ॥ मन्यास्तम्भेन मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यमकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, श्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्या नाड़ीके स्तम्भसे मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफोल्बणसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्यु स्तम्भकम्पशिरोग्रहाः । कासश्वासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ खेभ्यो रक्तं विसृजति तत्राप्येतद्विशेषणम् । अर्वाक्

स्तीव्रः प्रजायते ॥ ३६० ॥ पित्तोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत्। भिषग्भिः सन्निपातोऽयमाशुकारी प्रकीर्तितः ॥ ३६१ ॥

अतिसार (दस्तहों), भ्रम, मूर्च्छा, मुखका पकना, शरीरमें लालबिंदुओंका पड़ना और तीव्र दाहका होना ये लक्षण जिसमें हों उसको पित्तोल्वण आशुकारी सन्निपात जानना ॥ ३६१ ॥

कफोल्वण कंपनसन्निपातके लक्षण।

जडता गद्गदा वाणी रात्रौ निद्रा भवत्यपि। प्रस्तब्धे नयने चैव मुखमाधुर्यमेव च॥३६२॥ कफोत्तरस्य रूपाणि सन्निपातस्य लक्षयेत्। मुनिभिस्सन्निपातोऽयमुक्तः कम्पनसंज्ञकः ॥ ३६३ ॥

शरीरकी जड़ता, गद्गद बोलना, रात्रिमें नींद आना, नेत्रोंकी टकटकीसी लगी रहना और मुखमें मधुरता, ये सब लक्षण जिसमें हों उसको कफोल्वण कंपन सन्निपात जानना ॥ ३६२ ॥ ३६३ ॥

हीनवात मध्यपित्त और अधिककफ वैदारिक सन्निपातके लक्षण।

हीनमध्याधिकैर्यस्य वातपित्तकफैः क्रमात्। सन्निपातः प्रभवति पीडयन्दोषदर्शनात् ॥ ३६४ ॥ अल्पशूलं कटीतोदो मध्ये दाहो रुजा भ्रमः। भृशं क्लमः शिरोवक्त्रमन्याहृदयवाग्रुजः ॥ ॥ ३६५॥ प्रमीलिकाः श्वासहिक्काकासजाड्यविसंज्ञताः। प्रथमोत्पन्नमेतत्तु साधयेत्तु कदाचन ॥ ३६६ ॥ एतस्मिन्सन्निपाते तु कर्णमूले सुदारुणा। पिटिका जायते जन्तुर्यया कृच्छ्रेण जीवति ॥ ३६७ ॥ स वैदारिकसंज्ञोऽयं सन्निपातः सुदारुणः। त्रिरात्रात्परमेतस्य व्यर्थमौषधकल्पनम् ॥ ३६८ ॥

जिसके हीनवात, मध्यपित्त और अधिक कफके कोपसे सन्निपात होता है, उसके उन्हीं दोषोंके क्रमसे पीड़ा करतेहुए लक्षण होते हैं अर्थात् उसमें वातजन्य उपद्रव अल्प, पित्तजन्य उपद्रव मध्यम और कफजन्य उपद्रव अधिक तथा अधिक पीड़ा करते हैं, जैसे कि अल्पशूल और कमरमें पीड़ा ये हीनवातके लक्षण जानने। मध्यदाह, पीड़ा और भ्रम ये मध्यपित्तके लक्षण जानने तथा अत्यंत ग्लानि यह अधिक कफका लक्षण है इत्यादि। एवं शिर, मुख, मन्या, हृदय और जिह्वामें पीडा हो, नेत्र मिचेसे जावें, श्वास, हिचकी, खाँसी, जडता हो, बेहोशी होवे। इसके उत्पन्न होतेही यदि चिकित्सा की जावे तो कदाचित् आराम होजाय पश्चात् नहीं। इस सन्निपातमें कानकी जड़में दारुण सूजन उत्पन्न होती है, जिसके प्रभावसे मनुष्य बड़े दुःखसे जीता है। इस दारुणसन्निपातको वैदारिक कहते हैं, तीन रात्रिके पश्चात् इसकी औषधि करनी वृथा है ॥३६४॥३६५॥३६६॥३६७॥३६८॥

मध्यवात, हीनपित्त, अधिककफ— कर्कोटकसन्निपातके लक्षण।

मध्यहीनाधिकैर्यस्य सन्निपातो यदा भवेत्। तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३६९ ॥ अन्तर्दाहो विशेषोऽत्र प्रवक्तुं न च शक्यते। रक्तमालक्तकेनेव लक्ष्यते मुखमण्डलम् ॥ ॥ ३७० ॥ यत्नेनाकर्षितः श्लेष्मा हृदयान्न प्रसिच्यते। इषुणेवाहतं पार्श्वं तुद्यते खन्यते हृदि ॥ ३७१ ॥ प्रमीलिकाश्वासहिक्का वर्धन्ते तु दिने दिने। जिह्वा दग्धा खरस्पर्शा गलः शूकैरिवावृतः ॥ ३७२ ॥ विसर्गं नाभिजानाति कूजते च कपोतवत्। अतीव श्लेष्मणा पूर्णः शुष्कवक्त्रोष्ठतालुकः ॥ ॥ ३७३ ॥ तन्द्रानिद्रातियोगार्तो हतवह्निर्हतद्युतिः। न चाति भजते ग्लानिं विपरीतानि यच्छति ॥३७४॥ आयम्यते च बहुशः सरक्तं ष्ठीवते-

ऽल्पशः । एष कर्कोटको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७५ ॥

जिसके मध्यवात, हीनपित्त और अधिक कफसे सन्निपात होता है उसके उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे हीन, मध्य और अधिक रोग होते हैं, शरीरके भीतर दाह होना, बोलनेमें असमर्थता, मुखमण्डलका आलके रंगके समान लाल होना, बलपूर्वक आकर्षित किया हुआ भी कफ हृदयसे बाहर नहीं निकलता, पसलियोंमें तीर चुभनेकीसी पीडा, हृदयमें खोदनेके समान पीडा, नेत्र मिचेसे जायँ, श्वास और हिचकी, दिन प्रतिदिन बढ़ते जायँ, जभि जलीहुईसी और खरखरी हो, कंठमें कांटे पड जायँ, बेहोशीमें मल मूत्रको त्याग देवें, अधिक कफसे परिपूर्ण हो जानेसे कण्ठ कबूतरके समान कूंजे, मुख, ओष्ठ और तालु सूख जायँ, तन्द्रा और निद्रा होवे, जठराग्नि नष्ट होजाय, कांति (शरीरकी शोभा) जाती रहे, अधिक ग्लानि न हो, विपरीत चेष्टा करे और थोड़ा २ रुधिर मिला थूके, ये दारुण सन्निपात 'कर्कोटक' नामसे प्रसिद्ध है ॥ ३६९ ॥ ॥३७०॥३७१॥३७२॥३७३॥३७४॥३७५ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफ-संमोहकसन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धमध्यहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३७६ ॥ प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः । एकपक्षाभिघातस्तु तत्राप्येतद्विशेषतः । एष संमोहको नाम्ना सन्निपातः सुदारुणः ॥ ३७७ ॥

अधिकवात, मध्यपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके अनुसार क्रमसे अधिक, मध्य और हीनरोग होते हैं । प्रलाप, श्रम, बेहोशी, कम्प, मूर्च्छा, चित्तका कहीं न लगना, भ्रम और एक ओरका अंग रह जाना इन विशेष लक्षणोंसे युक्त दारुण सन्निपातको 'संमोहक' कहते हैं ॥ ३७६ ॥ ३७७ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफोल्वण सन्निपातके लक्षण ।

हीनातिवृद्धमध्यैस्तु सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथादोषबलाश्रयाः ॥ ३७८ ॥ हृदयं दह्यते चास्य यकृत्प्लीहान्त्रफुफ्फुसाः । पच्यन्तेऽत्यर्थमूर्ध्वाधःपूयशोणितनिर्गमः ॥ ३७९ ॥

हीनवात, वृद्धपित्त और मध्यकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके क्रमसे हीन, अधिक और मध्यम रोग होते हैं । हृदयमें जलन, यकृत्, प्लीहा, आँतें और फेफड़ा यह पक जाते हैं, ऊर्ध्व और अधोमार्गसे राध और रुधिर निकलता है ॥ ३७८ ॥ ३७९ ॥

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यकफजन्य सन्निपातके लक्षण ।

प्रवृद्धहीनमध्यैस्तु वातपित्तकफैश्च यः। तेन रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः । प्रलापायाससंमोहकम्पमूर्च्छारतिभ्रमाः॥३८० ॥ मन्यास्तम्भेन मृत्युश्च तत्राप्येतद्विशेषणम् ।

अधिकवात, हीनपित्त और मध्यमकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषानुसार क्रमसे रोग होते हैं । तथा प्रलाप, श्रम, मोह, कम्प, मूर्च्छा, बेचैनी, भ्रम और मन्या नाड़ीके स्तम्भसे मृत्युका होना ये विशेष लक्षण होते हैं ॥ ३८० ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफोल्वणसन्निपातके लक्षण ।

मध्यप्रवृद्धहीनैश्च सन्निपातो यदा भवेत् । तस्य रोगास्त एवोक्ता यथारोगबलाश्रयाः ॥ ३८१ ॥ मोहप्रलापमूर्च्छाः स्यु स्तम्भकम्पशिरोग्रहाः । कासश्वासौ भ्रमस्तन्द्रा संज्ञानाशो हृदि ग्रहः ॥ ३८२ ॥ खेभ्यो रक्तं विसृजति तत्राप्येतद्विशेषणम् । अर्वाक्

त्रिरात्रान्मृत्युश्च तन्द्री वा स्तब्धलोचनः। एषां त्रयाणां नामानि याम्यक्रकचपाकलाः ॥ ३८३ ॥

मध्यवात, अधिकपित्त और हीनकफके कोपसे जो सन्निपात होता है, उसमें उन्हीं दोषोंके बलानुसार क्रमसे रोग होते हैं। मोह, प्रलाप, मूर्च्छा, अंधकारदर्शन, कम्प, शिरोरोग, खाँसी, श्वास, भ्रम, तन्द्रा, अचेत होजाना, हृदयमें पीडा, मुखनासिका आदिसे रुधिरका निकलना, तन्द्राका होना और नेत्रोंका पथराना ये विशेष लक्षण हैं। यह सन्निपात तीन दिनमें ही मनुष्यको मार देता है। उपरोक्त तीनो सन्निपातोंके क्रमसे याम्य, क्रकच और पालक नाम जानने ॥ ॥ ३८१ ॥ ३८२ ॥ ३८३ ॥

त्रिदोषोल्बण कूटपाकल सन्निपातज्वरके लक्षण।

सर्वदोषैः प्रकुपितं सन्निपातं निबोध मे। त्रयाणामपि दोषाणां सर्वरूपाणि लक्षयेत् ॥ ३८४ ॥ यानि ज्वरचिकित्सायां रूपाण्युक्तानि कृत्स्नशः। तैः सर्वैरेव सम्पूर्णैर्विज्ञेयः कूटपाकलः॥ ॥ ३८५ ॥ व्याधिभ्यो दारुणेभ्यश्च वज्रशस्त्राग्निसन्निभः। केवलोच्छ्वासपरमः स्तब्धाङ्गः स्तब्धलोचनः ॥ ॥ ३८६ ॥ त्रिरात्रात्परमेतस्य जन्तोर्हरति जीवितम् । तदावस्थन्तु तं दृष्ट्वा मूढो व्याहरते यतः ॥ ३८७ ॥ धर्षितो राक्षसैर्नूनमवेलायां चरन्ति ये। अन्यथा ब्रुवते केचिद्यक्षिण्या ब्रह्मराक्षसैः ॥ ३८८ ॥ पिशाचैर्गुह्यकैश्चैव तथान्यैर्मस्तके हतम् । कुलदेवार्चनाहीनं धर्षितं कुलदेवतैः॥ ३८९ ॥ नक्षत्रपीडामपरे गरकर्मेति चापरे । वदन्ति सन्निपातन्तु भिषजः कूटपाकलम् ॥ ३९० ॥

तीनों दोषोंके वल्वण होनेसे जो सन्निपात कुपित होता है उसमें तीनों दोषोंके सब लक्षण होते हैं। सब प्रकारके ज्वरोंमें जो जो लक्षण होते हैं वे सब लक्षण इस कूटपाकल सन्निपातमें होते हैं। यह दारुण व्याधि-वज्र, शस्त्र और अग्निके समान भयंकर है। इस सन्निपातरोगीके केवल श्वासमात्र ही आता है, सब शरीर जकड जाता है और नेत्र पत्थरके समान स्थिर होजाते हैं। तीन दिनके पश्चात् यह मनुष्यको मार देता है। इस सन्निपातरोगीको देखकर मूर्खलोग नानाप्रकारकी कपोलकल्पना करते हैं। कोई कहता है कि,-यह कुसमय (आधीरातके समय) चौराहा, श्मशानभूमि आदिस्थानोंमें गया इससे यहां राक्षसोंने दबालिया है। कोई कहता है कि-इसको देवीने ग्रस लिया है, कोई कहता है कि यक्षिणीने ग्रसा है, कोई ब्रह्मराक्षसकी बाधा बतलाता है, कोई पिशाचग्रसित और कोई गुह्यकग्रसित कहता है। कोई कहता है कि, इसके शिरमें चोट लगी है, कोई कहता है कि, इसने कुलदेवताका पूजन नहीं किया था अतः अब उन्होंने इसे दबालिया है, कोई नक्षत्रकी पीडा कहता है, कोई कहता है कि इसने विषभक्षण करलिया है, इसप्रकार मूढलोग अनेक प्रकारकी कल्पना करतेहैं परन्तु वैद्यलोग इसको कूटपाकल सन्निपात कहते हैं ॥ ३८४ ॥ ३८५ ॥ ३८६ ॥ ३८७ ॥ ३८८ ॥ ॥ ३८९ ॥ ३९० ॥

कूटस्थैर्जायते दोषैर्बलिभिः कूटपाकलम्। त्रयोदशविधं प्रोक्तं सन्निपातस्य लक्षणम् ॥ ३९१ ॥

यह बलवान् कूटस्थ दोषोंसे उत्पन्न होता है इसकारण इसको कूटपाकल सन्निपात कहते हैं। इस प्रकार तेरहप्रकारके सन्निपातोंके लक्षण कहेहैं ३९१॥

अथ सन्निपातचिकित्सा।

वर्ध्यते चापि हीनस्य क्षियत ह्युच्छ्रितस्य च । कफस्थानानुपूर्व्या वा सन्निपातज्वरक्रिया ॥ ३९२ ॥

अब सन्निपातकी चिकित्सा कहते हैं-हीन दोषको बढाकर और बढे हुए दोषको घटाकर कफके स्थानसे *प्रारम्भ करके सन्निपातकी चिकित्सा करना* उत्तम है ॥ ३९२ ॥

हीनस्य वर्धनाद्धानिर्वृद्धयोरिति निश्चयः । ह्रापनादतिवृद्धस्य हीनयोर्वृद्धिसम्भवः ॥ ३९३ ॥

सन्निपातमें हीन दोषको वढाना और वढेहुए षको घटाना अथवा अत्यंत वृद्धको हीन करना और नको वढाना इस प्रकार क्रिया करनी चाहिये३९३

ततः समत्वं दोषाणामामस्थानं कफस्य तु । तत्रस्थानां क्रियां तद्वदिति ज्वरविनिर्णयः ॥ ३९४ ॥

पश्चात् सव दोषोंमें प्रथम कफ और आमके स्थानसे चिकित्सा प्रारम्भ करनी चाहिये अर्थात् प्रथम कफ और आमको दूर करना चाहिये, ऐसा सव ज्वरोंमें नेश्चय है ॥ ३९४ ॥

यथा दोषोच्छ्रयश्चैव ज्वराञ्छेषानुपाचरेत् । निर्हरेत्पित्तमेवादौ ज्वरेषु समवायिषु । दुर्निवारतरं तद्धि ज्वरातेषु विशेषतः ॥ ३९५ ॥

जिस प्रकार दोष वढे हुए हों उसी प्रकार सम्पूर्ण ज्वरोंकी चिकित्सा करे । समवायि (मिलेहुए) ज्वरमें प्रथम पित्तको शमन करना चाहिये. कारण, पित्त अत्यंत दुर्निवार्य है और ज्वररोगपीड़ित शरीरमें विशेष कर दुर्निवार्य हो जाता है ॥ ३९५ ॥

सन्निपाते क्षुधार्तं यो भोजयेत्पिशितौदनम् । स कथं भिषगाख्यातिं लभेन्मूढो नराधमः ॥ ३९६ ॥

जो नराधम सन्निपात ज्वरमें रोगीको क्षुधाके समय मांस और भात खानेको देता है, वह मूर्ख किस प्रकार वैद्य कहा जा सकता है ? ॥ ३९६ ॥

सन्निपाते तु दाहार्थं यः सिञ्चेच्छीतवारिणा । आतुरः स कथं जीवेद्भिषग्वा स कथं भवेत् ॥ ३९७ ॥

सन्निपातरोगमें दाहसे पीडित मनुष्यको जो वैद्य शीतल जलसे सींचता है तो वह रोगी कैसे जी सकता है ? और वह वैद्य वैद्य कैसे होसकता है ३९७ ॥

सन्निपातेन मनुजं विलपन्तन्तु यो घृतम् । पाययेद्भोजयेद्वापि तौ च स्यातामुभौ वधम् ॥ ३९८ ॥

जो मनुष्य सन्निपातरोगमें प्रलाप करते हुए मनुष्यको घृतपान करावे, अथवा भोजनमें घृत देवे तो इन दोनों विधियोंसे रोगी मरजाता है ॥ ३९८ ॥

सन्निपातेन तप्यन्तं पार्श्वरुक्तालुशोषिणम् । यः पाययेज्जलं शीतं स मृत्युर्नरविग्रहः ॥ ३९९ ॥

सन्निपातरोगमें तृषासे पीड़ित तथा पसलियोंकी पीड़ा और तालुशोषसे पीड़ित रोगीको यदि शीतल जल पिलावे तो उस वैद्यको मृत्युरूप जानना ॥३९९

समुद्रतरणं ह्येतद्वदन्ति भिषगीश्वराः । मृत्युना सह योद्धव्यं सन्निपातचिकित्सुना ॥ ४०० ॥

जो सन्निपातकी चिकित्सा करता है वह वैद्य साक्षात् मृत्युके साथ युद्ध करता है, उसको प्राचीन वैद्य समुद्रसे तारनेवाला कहते हैं ॥ ४०० ॥

सन्निपातार्णवे मग्नं योऽभ्युद्धरति मानवम् । कस्तेन न कृतो धर्म्मः काञ्च पूजां न सोऽर्हति ॥ ४०१ ॥

सन्निपातरूपी समुद्रमें डूवेहुए रोगीको जो उद्धार करता है उसने कौनसा धर्म नहीं किया ? और वह कौनसी पूजाको प्राप्त नहीं होता है ? ॥ ४०१ ॥

श्लेष्मनिग्रहमेवादौ कुर्याद्व्याधौ त्रिदोषजे । निरस्ते श्लेष्मणि ह्यस्य स्रोतस्सुद्धाटितेषु च । लाघवं जायते ह्यस्य तृष्णा चैवोपशाम्यति ॥ ४०२ ॥

सन्निपातज्वरमें प्रथम कफको दूर करे, क्योंकि जव कफ निकल जायगा तव सव शरीरके छिद्र शुद्ध होजायँगे और शरीर भी हलका हो जायगा फिर तृषा भी शांत हो जायगी ॥ ४०२ ॥

लङ्घनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा । अवलेहोऽञ्जनश्चैव प्राक्प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ ४०३ ॥

लंघन, वालुकास्वेद, (वालूसे सेककर पसीना निकालना), नास देना, निष्ठीवन(कुल्ले करना), अवलेह और अंजन ये सव सन्निपातमें प्रथम प्रयोग कराने चाहिये ॥ ४०३ ॥

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा। लङ्घनं संनिपातेषु कुर्य्यादारोग्यदर्शनात् ॥ ४०४ ॥

तीन या पाँच रात्रि अथवा सात रात्रि किंवा दश रात्रि या आरोग्य होनेपर्यंत सन्निपातमें लंघन कराने चाहिये ॥ ४०४ ॥

दोषाणामेव सा शक्तिर्लङ्घने या सहिष्णुता । नहि दोषक्षये कश्चित्सहते लङ्घनादिकम् ॥ ४०५ ॥

जितने दिनोंतक रोगी लंघन सहसके उतने दिनोंपर्यंत दोषोंका बल जानना चाहिये क्योंकि दोषोंके नाश होनेपर ऐसा कौन मनुष्य है जो लंघनको सह लेवे ॥ ४०५ ॥

कफपित्ते द्रवे धातू सहेते लङ्घनं महत् । आमक्षयादूर्ध्वमपि वायुर्न सहते क्षणम् ॥ ४०६ ॥

कफ और पित्त ये दोनों पतले पदार्थ हैं, इसकारण ये बहुत लंघनोंको सह सकते हैं। आमके क्षय होनेपर केवल वायु शेष रहजाता है, यह एक क्षण भी लंघन नहीं सह सकता है ॥ ४०६ ॥

उत्तम, हीन और अधिक लंघन होनेके लक्षण ।

ग्लान्यङ्गगौरवे श्रद्धाधिकृतिर्हीनलङ्घिते । भक्ताकांक्षालाघवो ग्लानिः स्वस्थता सुप्रसन्नता ॥ ४०७ ॥ उपद्रवनिवृत्तिश्च सम्यग्लङ्घितलक्षणम् । संमोहः सन्धिशैथिल्यं वातरुक्चातिलङ्घिते॥ ४०८ ॥

शरीरमें ग्लानि, भारीपन, अश्रद्धा ये विकार हीनलंघनके हैं । भोजनमें इच्छा, शरीरमें हलकापन, ग्लानिका नाश, स्वस्थता, प्रसन्नता और पूर्ण उपद्रवोंकी निवृत्ति ये अच्छे प्रकारसे लंघन होनेके लक्षण हैं । मोह, संधियोंमें शिथिलता और वातके रोग ये लक्षण अत्यंत लंघन करनेमें होतेहैं ॥ ४०७॥ ॥ ४०८ ॥

शस्तं मुलङ्घितस्यादौ विधाय कवलग्रहम् ॥ ४०९ ॥

सन्निपातमें अच्छेप्रकारसे लंघन किये हुए मनुष्यको प्रथम कवल धारण कराना चाहिये ॥ ४०९॥

लाजसक्तुकपथ्यं स्यात्सैन्धवेनावचूर्णितम् । तच्चेज्जीर्यत्यविघ्नेन रोगी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ४१० ॥

खीलोंके सत्तुओंको सेंधे नमकके साथ मिलाकर सन्निपातरोगीको देवे,जो यह अच्छे प्रकारसे पचजाय और कुछ विकार न लावे तो रोगी निश्चय जीता है ॥ ४१० ॥

रक्तपित्तहरत्वेन दाहज्वरकृते तथा । सक्तवः शीतवीर्य्याः स्युर्लाजपूर्वा हिता न ते ॥ ४११ ॥

खीलोंके सत्तु,रक्तपित्त और दाहज्वरको नष्ट करते हैं इसकारण शीतवीर्य्य हैं, शीतवीर्य होनेके कारण सन्निपातमें हितकारी नहीं हैं ॥ ४११ ॥

पाचनो दीपनो लाजमण्डस्तेनोष्ण इष्यते । अतोऽयं दशमूलादिसाधितोऽयं भिषग्मतः ॥ ४१२ ॥

खीलोंका मांड-पाचन, दीपन और उष्ण है। इसलिये इसको दशमूलादि औषधियोंके क्वाथमें सिद्ध करके देना चाहिये ॥ ४१२ ॥

पञ्चमुष्टिकयूषेण त्रिकण्टककृतेन च । त्रिदोषशमनार्थं त्रिकण्टेनैव साधयेत् ॥ ४१३ ॥ यवकोलकुलत्थानां मुद्गामलकशुण्ठ्ययोः । एकैकं मुष्टिमादाय पचेदष्टगुणे जले ॥ ४१४ ॥ पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः। शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥ ४१५ ॥

पंचमुष्टिकयूषकी औषधियोंको गोखुरूके क्वाथमें डालकर विधिपूर्वक यूष सिद्ध कर त्रिदोषशमन करनेके लिये देवे । जौ, बेर, कुलथी, मूँग और आमले

प्रत्येकको एक २ मुट्ठी लेकर अठगुने जलमें पकावे, जब यूप पककर सिद्ध होजाय तब उतारकर छान लवे फिर उसमें थोडासा सोंठका चूर्ण डाल देवे। इसको पंचमुष्टिकयूप कहते हैं। यह पंचमुष्टिकयूप वात, पित्त और कफनाशक है तथा गुल्म, शूल, श्वास, खाँसी, क्षय और ज्वरमें हितकारी है॥४१३॥४१४॥ ॥४१५॥

यवकोलकुलत्थैश्च मुद्गामलकसंयुतैः। धान्याकविश्वयुक्तैश्च यूषो वातकफापहः ॥४१६॥ सप्तमुष्टिक इत्येष सान्निपातज्वरापहः। कफवातामदोषघ्नः कण्ठहृद्वक्त्रशोधनः ॥ ४१७ ॥ आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रयम्। आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ ४१८ ॥ तेनास्य हृदये श्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात्। लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते४१९ पर्वभेदो ज्वरो मूर्च्छा निद्राश्वासगलामयाः। मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥४२०॥ सकृद्द्वित्रिश्च तुः कुर्य्याद्दृष्ट्वा दोषबलाबलम्। एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ४२१॥

जौ, बेर, कुलथी, मूँग, आमले, धनियाँ और सोंठ प्रत्येकको ४-४-तोले लेकर पूर्वोक्त विधिसे यूप बनावे । इसको सप्तमुष्टिकयूप कहते है। यह सप्तमुष्टिकयूप वातकफनाशक तथा सान्निपातज्वर, कफ, वात और आमदोषनाशक है एवं कंठ, हृदय और मुखको शुद्ध करता है। सैंधानोन, सोंठ, मिरच, पीपल इनके चूर्णको अदरखके रसमें मिलाकर मुखमें धारण करे,जो कफ आवे तो उसको बारंबार थूकता रहे। इस प्रकार करनेसे हृदय,मन्या, पसली, शिर और गलेमें लिसाहुआ भी कफ खिंचकर बाहर निकल जाता है और शरीर हलका हो जाता है, संधियोंकी पीड़ा, ज्वर, मूर्च्छा, निद्रा, श्वास, गलरोग, मुख तथा नेत्रोंकी गुरुता, शरीरकी जड़ता और उबकाई दूर होती हैं । इसप्रकार दोषोंका बलाबल विचार कर दो, तीन या चार बार करे, यह सान्निपातरोगियोंकी उत्तम औषधि है॥ ४१६-४२१ ॥

सुरसार्जकनिर्यासः समधुर्व्योषसैन्धवः। महाश्लेष्मानिलोद्रेकसंज्ञानाशविमोक्षणः ॥४२२॥

तुलसीका स्वरस, शहद,राल, त्रिकुटा और सैंधानोन इन सबको एकत्र मिलाकर चाटे तो बढे हुए कफवात नष्ट हों तथा चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ४२२ ॥

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाःसमाः। श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्य्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥ ४२३ ॥

महुएका सार, सैंधानोंन, वच,काली मिरच और पीपल इन सबको समान भाग लेकर जलमें बारीक पीसकर नास लेनेसे संज्ञाका ज्ञान होता है ॥ ४२३॥

स्विन्नमामलकान्पिष्ट्वा द्राक्षया सहसंमृजेत्। विश्वभेषजसंयुक्तं मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२४ ॥ तेनास्य शाम्यते मूर्च्छा कासः श्वासस्तथैव च ॥४२५॥

सीजेहुए आमले, मुनक्का और सोंठ इन सबको एकत्र पीस शहदके साथ चाटनेसे मूर्च्छा, खाँसी और श्वास ये सब दूर होते हैं ॥ ४२४ ॥ ४२५॥

अष्टाङ्गं मधुना लिह्यादार्द्रकस्वरसेन वा। संमोहं दारुणं हन्ति तन्द्राकाससमन्वितम् ॥ ४२६ ॥

अष्टांग अवलेहको शहद अथवा अदरखके रसमें मिलाकर चाटनेसे तन्द्रा और खाँसी संयुक्त बेहोशी दूर होती है ॥ ४२६ ॥

कट्फलं पुष्करं भार्ङ्गी व्योषं यासश्च कारवी। श्लक्ष्णचूर्णीकृतश्चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ ४२७ ॥ एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम्। हिक्कां श्वासश्च कासश्च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ ४२८ ॥ एतद्योज्यं कफोद्रेके चूर्णमार्द्रकजै रसैः। ऊर्ध्वजत्रुगदघ्नी या सायं कार्य्यावलेहिका। अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता ॥४२९ ॥

कायफल, पोहकरमूल, भारंगी, त्रिकुटा, जवासा और कलौंजी इन सबको एकत्र महीन पीसकर अदरखमें मिलाकर चाटे तो दारुणसन्निपात, हिचकी, श्वास, खाँसी और कंठरोग नष्ट होते हैं। इस चूर्णको कफकी अधिकतामें अदरखके रसमें मिलाकर सेवन करे। जो अवलेह ऊर्ध्वजत्रु और अधोगत रोगोंको हरण करनेवाले हैं उनको सन्ध्याके समय भोजनसे प्रथम देना चाहिये ॥ ४२७ ॥ ४२८ ॥ ४२९ ॥

मरिचं पिप्पली शुण्ठी पथ्या लोध्रं सपुष्करम्। भूनिम्बकटुका कुष्ठं वचानी कट्फलं तथा ॥ ४३० ॥ एतानि समभागानि सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत। प्रस्वेदे कण्ठरोधे च सन्धौ मर्दनमिष्यते। एतदुद्धूलनं प्रोक्तं सन्निपातहरं परम् ॥ ४३१ ॥

त्रिकुटा, हरड़, लोध, पोहकरमूल, चिरायता, कुटकी, कूठ, अजवायन और कायफल इन सबको समान भाग लेकर बारीक चूर्ण करले, इसको अधिक पसीनेके आनेमें, कंठरोध और संधियोंकी पीड़ा होनेपर शरीरमें मर्दन करे। यह उत्तम उद्धूलन सन्निपातनाशक है ॥ ४३० ॥ ४३१ ॥

सर्वेषु सन्निपातेषु न क्षौद्रमवचारयेत। शीतोपचारि क्षौद्रं स्याच्छीतं चात्र विरुध्यते ॥ ४३२ ॥

सम्पूर्ण सन्निपातोंमें मधु नहीं देना चाहिये। कारण यह है कि, मधुभक्षण करनेके पश्चात् शीतल उपचार करनेकी आवश्यकता होती है, किन्तु सन्निपातमें शीतल उपचार वर्जित है ॥ ४३२ ॥

क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिः क्रियासांकर्यमिष्यते। भिन्नरूपतया तास्तु न कुर्वन्ति हि दूषणम् ॥ ४३४ ॥

जो एक समयमें एकसी दो चिकित्सा की जाती हैं उनको संकरक्रिया कहते हैं, उक्त क्रिया पृथक् पृथक् करनेसे दोषकारक नहीं होती हैं ॥ ३४४ ॥

यदा स्वल्पानिलकफौ तालुक्लोमगतौ श्रितौ। कुर्यातामधिकं शोषं जिह्वायाः खरतां तथा ॥ ४३४ ॥ तदा तां स्फुटितां जिह्वामुच्छुष्कां मधुपिष्टया। द्राक्षया साज्यया चास्यं लेपयेत्संनिपातिनः ॥ ४३५ ॥ घर्षेज्जिह्वां जडां सिन्धुत्र्यूषणैः साम्लवेतसैः ॥ ४३६ ॥

जब अल्पवात और कफके आश्रित तालु और क्लोम होते हैं तब अधिक शोष उत्पन्न करते हैं तथा जीभको खरदरी और फटीसी कर देते हैं। इसपर मुनक्का शहद अथवा घीमें पीसकर जिह्वापर लेप करना चाहिये। जो जिह्वा जड़ होजाय तो सैंधानोन और त्रिकुटेके चूर्णको अमलबेतके रसमें मिलाकर जीभपर घिसे ॥ ४३४ ॥ ४३५ ॥ ४३६ ॥

स्वेदोद्गमे भ्रष्टकुलत्थचूर्णनिपातनं शस्तमिति ब्रुवन्ति। मृत्युश्च तस्मिन्बहुपिच्छिलत्वाच्छीतस्य जन्तोः परितः सरत्वात ॥ ४३७ ॥

सन्निपातज्वरमें बहुत पसीना आवे तो भुनीहुई कुलथीको पीसकर शरीरमें मर्दन करना चाहिये। इस पसीनेमें बहुत पिच्छिलता होनेके कारण और उससे शीघ्र ही शीतके फैलजानेसे तत्काल रोगीकी मृत्यु होती है ॥ ४३७ ॥

चूर्णं यथा कट्फलकृष्णजीरकं लोध्रं गवां काननविट्पुरातनम्। तिक्ता सपथ्या लवणं तथाञ्जनमुद्धूलनं स्वेदधिकारजित्परम् ॥ ४३८ ॥

कायफल, कालाजीरा, लोध, पुराने आरने उपले, कुटकी, हरड, नमक और अञ्जन इन सबको बारीक पीसकर शरीरमें मलनेसे पसीनेका आना बंद होजाता है ॥ ४३८ ॥

भूनिम्बः कारवी तिक्ता वचा कट्फलजं रजः। उद्धूलनं त्रिदोषोत्थे ह्यभिष्यन्दिनि च ज्वरे ॥ ४३९ ॥

चिरायता, कालाजीरा, कुटकी, बच और कायफल इन सबको बारीक पीसकर उद्धूलन करे, यह त्रिदोषज्वर और अभिष्यान्दिज्वरमें हितकारी है ॥ ४३९ ॥

बिल्वोऽग्निमन्थः स्योनाकः काश्मरी पाटला स्थिरा। त्रिकण्टकः पृष्ठपर्णी

बृहती कण्टकारिका । दशमूलमिदं श्वाससन्निपातज्वरापहम् ॥ ४४० ॥ अविपाकानिलश्लेष्मतन्द्रापार्श्वार्त्तिकासनुत । पिप्पलीचूर्णसंयुक्त हृत्कण्ठग्रहनाशनम् ॥ ४४१ ॥ महान्ति यानि मूलानि काष्ठगर्भाणि यानि च। तेषां तु वल्कलं ग्राह्यं ह्रस्वमूलानि कृत्स्नशः ॥ ४४२ ॥

बेलगिरी, अरणी, सोनापाठा, कुम्भेर, पाढल, शालपर्णी, पृश्निपर्णी, गोखरु, बड़ी कटेरी और कटेरी इन सब औषधियोंके समुदायको दशमूल कहते हैं । यह दशमूल,श्वास, सन्निपातज्वर, अजीर्ण, वात, कफ, तन्द्रा, पार्श्ववेदना और खांसीको नष्ट करता है । इसमें पीपलका चूर्ण मिला लिया जाय तो हृदय और कंठवरोधको दूर करता है । इनमें जिन औषधियोंकी बड़ी जडें हैं और जो छालसे लिपटी हुई हैं उनके छाल लेने चाहिये और जिनकी छोटी जड़ें हैं उनका सर्वांग लेना चाहिये ॥ ४४०—४४२ ॥

दशमूलस्य निर्यूहः कट्फलादिरजोयुतः । तुल्यार्द्रकरसोपेतो मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ॥ ४४३ ॥

दशमूलके निर्यूहमें कायफल आदिका चूर्ण और समानभाग अदरखका रस मिलाकर पान करे तो मृत्युकल्पके समान ज्वरको भी नष्ट करता है॥४३३॥

पञ्चमूलीकिराताादिगणो योज्यस्त्रिदोषजे । पित्तोत्कटे च मधुना कणया वा कफोत्कटे ॥ ४४४ ॥

त्रिदोषज्वरमें पञ्चमूलके क्वाथमें किराताादि गणकी औषधियोंको मिलाकर प्रयोग करे एवं पित्ताधिकसन्निपातमें पञ्चमूलके क्वाथको शहदके साथ और कफाधिकमें पञ्चमूलके क्वाथको पीपलके साथदेवे ॥४४४॥

चिरज्वरे वातकफोल्बणे वा त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः । किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृताविमिश्रः ॥ ४४५ ॥

दशमूल, चिरायता, नागरमोथा, गिलोय और सोंठ इनका क्वाथ पुराने वातकफोल्वणज्वरमें अथवा त्रिदोष ज्वरमें देवे, यदि दस्त लानेकी आवश्यकता हो तो निसोतका चूर्ण डाल कर देवे ॥ ४४५ ॥

दशमूली शठी शृङ्गी पौष्करं सदुरालभम् । भार्ङ्गी कुटजबीजञ्च पटोलं कटुरोहिणी ॥ ४४६ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येषः सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः॥४४७॥

दशमूल, कचूर, काकड़ाशिंगी, पोहकरमूल, धमासा, भारङ्गी, इन्द्रजौ, पटोलपत्र और कुटकी इन सब औषधियोंको अष्टादशांग कहते हैं। यह अष्टादशांग क्वाथ सान्निपातज्वर, खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमनको, दूर करता है ॥ ॥ ४४६ ॥ ४४७ ॥

दशमूलीकषायन्तु पुष्कराह्वकणायुतम् । सन्निपातज्वरे देयं श्वासकासतृषान्विते ॥ ४४८ ॥

दशमूलके क्वाथमें पोहकरमूल और पीपलका चूर्ण डालकर श्वास, खांसी और तृषा युक्त सन्निपातज्वरमें देना चाहिये ॥ ४४८ ॥

बृहत्यौ पुष्करं भार्ङ्गी शठी शृङ्गी दुरालभा । वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ ४४९ ॥ बृहत्यादिगणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः । श्वासादिषु च सर्वेषु हितः सोपद्रवेषु च ॥ ४५० ॥

बड़ी कटेरी, कटेरी, पोहकरमूल, भारङ्गी, कचूर, काकड़ा शिंगी,धमासा,इन्द्रजौ,पटोलपात और कुटकी इन औषधियोंके समूहको बृहत्यादिगण कहते हैं।यह बृहत्यादिगण सन्निपातज्वरनाशक है तथा श्वासादि सब उपद्रव सहित त्रिदोषज्वरमें हितकारी है४५०॥४४९॥

शठीपुष्करमूलं च व्याघ्री शृङ्गी दुरालभा । गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी॥४५१॥ एष शट्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासे तन्द्र्याञ्च शस्यते ॥ ४५२ ॥

कचूर, पोहकरमूल, कटेरी, काकड़ाशिंगी,धमासा, गिलोय, सोंठ, पाढ, चिरायता और कुटकी इन सब

औषधियोंके समूहको शठ्यादिवर्ग कहते हैं। यह शठ्यादिवर्ग सन्निपातज्वरनाशक है, तथा खांसी, हृदयरोग, पसलियोंकी पीडा, श्वास और तन्द्रामें हितकारी है ॥ ४५१ ॥ ४५२ ॥

शटी पुष्करमूलन्तु गुडूची विश्वभेषजम् । त्रिकण्टकं त्रायमाणा पिप्पली सदुरालभा ॥ ४५३ ॥ व्याघ्री पर्पटकं रास्नाऽभया कटुकरोहिणी । देवदारु वचा भार्ङ्गी समभागानि कारयेत् ॥ ॥ ४५४ ॥ एष शठ्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः । कासं श्वासं दिवानिद्रां रात्रौ जागरणं तथा । मुखशोषं तृषां दाहं त्रिदोषञ्च नियच्छति ॥ ४५५ ॥

कचूर, पोहकरमूल, गिलोय, सोंठ, गोखुरु, धनपसा, पीपल, धमासा, कटेरी, पित्तपापडा, रायसन, हरड, कुटकी, देवदारु, वच और भारङ्गी इन सब औषधियोंके समुदायको वृहच्छठ्यादिवर्ग कहते हैं। यह शठ्यादिवर्ग सन्निपातज्वर, खांसी, श्वास, दिन में सोना, रात्रिमें जागना, मुखशोष, तृषा, दाह और त्रिदोषको नष्ट करता है ॥ ४५३ ॥ ४५४॥४५५ ॥

पित्ताधिक्ये तु शठ्यादिर्बृहत्यादिः कफाधिके । वातोत्तरे सन्निपाते कट्फलादिः प्रशस्यते ॥ ४५६ ॥

पित्ताधिकसन्निपातमें शठ्यादिकाथ, कफाधिक सन्निपातमें बृहत्यादि और वाताधिकसन्निपातमें कट्फलादिक्वाथ हितकारी है ॥ ४५६ ॥

कट्फलाब्दवचापाठापुष्कराजाजिपर्पटैः । देवदार्वभयाशृङ्गीकणाभूनिम्बनागरैः ॥ ४५७ ॥ भार्ङ्गीकलिङ्गकटुकाशटीकत्तृणधान्यकैः । समांशैः साधितः क्वाथो हिंग्वार्द्रकरसैर्युतः ॥ ॥ ४५८ ॥ कर्णमूलोद्भवं शोथं हन्ति मन्यागलाश्रयम् । कफवातज्वरं श्वासं कासं हिक्कां हनुग्रहम् ॥ ४५९ ॥ दशमूलयुतो ह्येष सन्निपातज्वरं जयेत् । अभिन्यासं समस्तञ्च कट्फलादिर्नियच्छति ॥ ४६० ॥

कायफल, नागरमोथा, वच, पाठ, पोहकरमूल, जीरा, पित्तपापडा, देवदारु, हरड, काकडासिंगी, पीपल, चिरायता, सोंठ, भारङ्गी, इन्द्रजौं, कुटकी, कचूर, सुगन्धतृण और धनियां इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनाकर हींग और अदरखका रस मिलाकर पान करे तो कर्णमूलोत्पन्न सूजन, गलाश्रित शोथ, कफवातज्वर, खांसी, श्वास, हिचकी और हनुस्तम्भादिरोग दूर होते हैं। इसमें दशमूलका काथ मिलाकर पीवे तो यह सन्निपातज्वर और सर्वप्रकारके अभिन्यास ज्वरको दूर करता है । ॥ ४५७ ॥ ४५८ ॥ ४५९ ॥ ४६० ॥

दारुनागरभूनिम्बधान्यतिक्ताकलिङ्गजैः । गजाह्वादशमूलाब्दैर्मृत्युकल्पं ज्वरं जयेत् ॥ ४६१ ॥ अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः । कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीर्हरेत् ४६२॥

देवदारु, सोंठ, चिरायता, धनियां, कुटकी, इन्द्रजौं, गजपीपल, दशमूल और नागरमोथा, इनके काथको अष्टादशांगकाथ कहते हैं। यह अष्टादशांग काथ सन्निपातज्वरको नष्ट करता है तथा खांसी, हृदयकी पीडा, पसलियोंकी पीडा, श्वास, हिचकी और वमनको दूर करता है ॥ ४६१ ॥ ४६२ ॥

गुडूची चन्दनं पद्मनागरेन्द्रयवासकम् । अभयारग्वधोशीरपाठा धान्याब्दरोहिणी ॥ ४६३ ॥ कषायं पाययेदेतत्पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । तन्द्राकासज्वरश्वासपिपासादाहनाशनः ॥ ४६४ ॥ विण्मूत्रानिलविष्टम्भत्रिदोषप्रभवस्य च । गुडूच्यादिगणो ह्येष पाचनो दीपनः परः ॥ ४६५ ॥

गिलोय, लाल चन्दन, पद्माख, सोंठ, इन्द्रजौ, जवासा, हरड, अमलतास, खस, पाढ, धनियां, नागरमोथा और कुटकी इनके काथमें पीपलका चूर्ण डालकर पान करानेसे तन्द्रा, खांसी, ज्वर, श्वास, पियास, दाह, त्रिदोषके कुपित होनेसे मल, मूत्र और वायुका अवरोध ये दूर होते हैं। यह गुडूच्यादिगण पाचन और दीपन है ॥ ४६३ ॥ ४६४ ॥ ॥ ४६५ ॥

अमृतादशमूलीभ्यां साधितं विधिवज्जलम्।सन्निपातज्वरं हन्यात्त्रयोदशविधं नृणाम् ॥ ४६६ ॥

गिलोय और दशमूलके द्वारा विधिपूर्वक सिद्ध किया हुआ क्वाथ तेरह प्रकारके सन्निपातोंको नष्ट करता है ॥ ४६६ ॥

विषशुण्ठी दशमूली छिन्ना पाठा च पिप्पलीन्द्रयवैः । साकिराततिक्तवासा शमयति हृतौजसं सद्यः ॥४६७॥

अतसी, सोंठ, दशमूल, गिलोय, पाढ, पीपल, इन्द्रजौ, चिरायता और अडूसा, इनका क्वाथ ज्वरसे क्षीणरोगीको तत्काल आरोग्य करता है ४६७

त्र्यूषणदशमूलशुण्ठीभार्ङ्गीछिन्नोद्भवोद्भवः क्वाथःपीतः शमयति सहसा ज्वरमुग्रं सन्निपाताख्यम् ॥ ४६८ ॥

त्रिकुटा, दशमूल, सोंठ, भारंगी और गिलोय इनका क्वाथ पान करनेसे शीघ्र ही सन्निपात ज्वर दूर होता है ॥ ४६८ ॥

द्विपञ्चमूली षड्ग्रंथा विश्वा गृध्रनखीद्वयम्। कफवातहरः क्वाथः सन्निपातहरः परः ॥ ४६९ ॥

दशमूल, वच, सोंठ, बेर और झड़बेर (किसीके मतसे काआठोडी और मकोय) इनका क्वाथ सन्निपात ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४६९ ॥

सिंहास्यपर्पटारिष्टं यष्टिधान्याकनागरम् ।दारूग्रगन्धेन्द्रयवाः श्वदंष्ट्राग्रन्थिकं तथा ॥ ४७० ॥ एषां कषायमह्नि सन्निपातज्वरे पिबेत् ।श्वासातिसारकासघ्नं शूलारुचिहरं परम् ४७१॥

अडूसा, पित्तपापड़ा, नाम,मुलैठी,धनियां, सोंठ, देवदारु, वच, इन्द्रजौ, गोखरू और पीपलमूल इनका क्वाथ बनाकर दिनमें पान करनेसे सन्निपात-ज्वर,श्वास,अतिसार, खाँसी, शूल और अरुचि दूर होती है ॥ ४७० ॥ ४७१ ॥

कट्फलं त्रिफला दारु चन्दनं सपरूपकम् ।कटुकं पद्मकोशीरं विपचेत्क्वाथिकं जलम् ॥४७२ ॥ तत्सन्निपातदाहघ्नं पानमात्रे प्रपूजितम् । दीर्घकालप्रयुक्तानां ज्वरिणाममृतोपमम्॥४७३॥

कायफल, त्रिफला, देवदारु, चन्दन, फालसा, त्रिकुटा, पद्माख और खस इनका क्वाथ बनाकर पान करनेसे सन्निपातज्वर और उसकी दाह दूर होती है। यह क्वाथ बहुत दिनोंके ज्वरवाले मनुष्यके लिए अमृतके समान है ॥ ४७२ ॥ ४७३ ॥

समुस्तं पञ्चमूलञ्च दद्याद्वातोत्तरे गदे। भृशोष्णं वा सुखोष्णं वा दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ॥ ४७४ ॥

पंचमूल और नागरमोथा इनका क्वाथ बनाकर दोषोंके बलाबलको विचार कर अधिक उष्ण अथवा मंदोष्ण वातोल्बण सन्निपातज्वरमें देवे ॥ ४७४ ॥

कफोत्तरे बृहत्यादिगणश्च दशमूलजः। परूषकाणि त्रिफला देवदारु सकट्फलम्। पित्तोत्तरे नृणामेतत्सन्निपाते चिकित्सितम् ॥ ४७५ ॥

कफाधिक सन्निपातमें बृहत्यादिगणकी औषधि, दशमूलकी औषधि, फालसेकी छाल,त्रिफला, देवदारु और कायफल इनका काढा देवे ॥ ४७५ ॥

मुस्ता पर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम् । त्रिफला धन्वयासश्च नीली कांपिल्लकं त्रिवृत ॥ ४७६॥ किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी । मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥ ४७७ ॥ अष्टादशाङ्गमुदकं सन्निपातज्वरापहम् ॥४७८॥ पित्तोत्तरे सन्निपाते हितमुक्तं मनीषिभिः । मन्यास्तम्भ उरोघाते हनुस्तम्भे शिरोगदे ॥ ४७९ ॥

पित्ताधिक सन्निपातमें नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला,धमासा,नीलकी छाल, कबीला, निसोत, चिरायता, पाढ, खिरैंटी, कुटकी, मुलैठी और पीपलामूल इन सब औषधियोंके समूहको मुस्तादिगण कहते हैं । यह अष्टादशांग क्वाथ सन्निपा-

तज्वरनाशक है, विशेष कर पित्तोल्वण सन्निपातमें अतीव हितकारी है तथा मन्यास्तम्भ, ऊरुस्तम्भ, हनुस्तम्भ और शिरोरोगमें अत्यन्त हितकारी है॥४७६॥ ॥ ४७७ ॥ ४७८ ॥ ४७९ ॥

त्र्योषाह्वत्रिफलारिष्टपटोलीतिक्तवत्सकैः । सभूनिम्बामृतापाठैस्त्रिदोषज्वरजिज्जलम् ॥ ४८० ॥

त्रिकुटा, त्रिफला, नीमकी छाल, पटोलपत्र, कुटकी, इन्द्रजौ, चिरायता, गिलोय और पाढ इनका क्वाथ त्रिदोषजनित ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४८०॥

बिल्वकं त्रिवृता दन्ती समूलं चतुरङ्गुलम् । पक्वं कषायं विस्राव्य नीलीचूर्णविमिश्रितम् ॥ ससर्पिष्कं पिबेत्तूर्णं सन्निपाते विरेचनम् ॥ ४८१ ॥

बेलगिरी, निसोत, दंती और अमलतास, इनकी जडके काथमें नीलका चूर्ण और घी मिलाकर पान करे तो सन्निपातरोगीको अच्छे प्रकारसे विरेचन हो जाता है ॥ ४८१ ॥

कम्पप्रलापनं यस्य संज्ञानाशश्च दारुणः । रसैश्च लाववर्तैश्च कलिङ्गैः शशतित्तिरैः ॥ ४८२ ॥ तर्पयेत्पाकपुराणेन सर्पिषाऽभ्यंजयेदपि । बलारास्नागुडूच्याद्यैस्तैलैश्च परिषेचयेत् ॥ ४८३ ॥

जिस रोगीके कम्प हो, प्रलाप करे और संज्ञा जाती रहे तो उसको लवा, बटेर, चिड़ा, कबूतर और तीतर इनके मांसरसको पिलावे, पश्चात् रोगीके शरीरसे पुराने घीको मलकर तर्पण करे तथा खिरैंटी, रायसन और गिलोय इत्यादिक द्वारा सिद्ध किया हुआ तेल शरीरमें लगावे ॥ २८२ ॥ ४८३ ॥

तन्द्राके लक्षण ।

आचितामाशयकफे सन्निपातज्वरे दृढे । शान्तेऽप्यवश्यं तस्याशु तन्द्रा समुपजायते ॥ ४८४ ॥ अभिद्रवरसक्षीरदिवास्वप्ननिषेवणात् । दुर्बलस्याल्पवातस्य जन्तोः श्लेष्मा प्रकुप्यति ॥४८५ ॥ वायुमार्गं समावृत्य धमनीरनुसृत्य सः । तन्द्रां सुघोरां जनयेत्तस्या वक्ष्यामि लक्षणम् ॥ ४८६॥ उन्मीलितविनिर्भुग्ने परिवर्तिततारके । भवतस्तस्य नयने लुलिते चलपक्ष्मणी ॥४८७॥ निवृत्ताननदन्तोष्ठं मुहुरुत्तानशायिनम् । पिच्छिलोच्छिन्नतन्तुश्च कण्ठे श्लेष्मास्य गच्छति ॥ ४८८ ॥ कण्ठमार्गविरोधश्च वैकृतं चोपजायते । सोऽर्वाक्त्रिरात्रं साध्यः स्यादसाध्यस्तु ततः परम् ॥ ४८९.॥

आमाशयमें आम और कफके संचित होनेसे जो दृढ सन्निपात ज्वर उत्पन्न होता है उसके शांत होनेपर शीघ्रही तन्द्रा उत्पन्न होती है । पतले रस और दूध आदि पदार्थोंको सेवन करनेसे, दिनमें सोनेसे दुर्बल और अल्पवायुवाले मनुष्यके कफ कुपित होकर वायुके मार्गको रोककर धमनियोंमें प्रवेश करके घोर तन्द्राको उत्पन्न करता है । अब उस तन्द्राके लक्षण कहता हूँ । तन्द्रावाले मनुष्यके नेत्र आधे मिचेसे अथवा टेढसे प्रतीत हों, तारोंको इधर उधर फेरे, नेत्र जडसे हो जावें तथा गिरेसे मालूम हों, पलक स्थिर हो जाय, होंठ ऊपरको सिमट जावें, दांत बाहरसे दीखने लगें, बारंबार चित्त होकर सोवे, चिपकता हुआ गाढ़ कफका टेंट मुखमें आवे और उससे कंठमार्ग रुक जाय, इसप्रकार अनेक विकार होवे हैं । यह तन्द्रा तीन दिनतक तो साध्य है पश्चात् असाध्य हो जाती है ॥ ४८४॥ ४८५॥४८६॥४८७॥४८८ ॥ ॥ ४८९ ॥

ज्योतिष्मत्यास्तथा तैलं मूलं पिण्डारकस्य च । तन्द्राविनाशनं श्रेष्ठं नस्यकर्म्मणि योजितम् ॥ ४९० ॥ सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपः कुष्ठमेव च । मूत्रेण पिष्ट्वा बस्तस्य नस्यं तन्द्राविनाशनम् ॥ ४९१ ॥

मालकांगनीका तेल और पिंडारकी जड दोनोंको एकत्र पीसकर नस्य देनेसे तन्द्रा दूर होती है । सैंधानोन सैंजिनेके बीज सरसों और कूठ इन सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नास लेनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९० ॥ ४९१ ॥

असुराह्वयगन्धस्य विट्चूर्णमधुसंयुतम्। अञ्जनाद्बोधयेन्मुग्धं तन्द्रितं सन्निपातिनम् ॥४९२॥ जातीपुष्पं प्रवालञ्च मरिचं रोहिणी वचा । सैन्धवं वस्तमूत्रेण तन्द्रानाशनमुत्तमम्॥४९३॥

गंधक और विड्लवणके चूर्णको शहदमें मिलाकर कांसेके पात्रमें घिसकर नेत्रोंमें अंजन लगानेसे तन्द्रावाला रोगी चैतन्य हो जाता है । चमेलीके फूल, मूँगा, कालीमिरच, कुटकी, वच और सेंधानोंन इन सबको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नास देनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९२॥ ४९३॥

अयोरजःश्वेतलोध्रमञ्जनं मरिचं तथा । गोपित्तेन समायुक्तं तन्द्रानाशनमुत्तमम् ॥ ४९४ ॥

लोहेका चूर्ण, सफेद लोध, अंजन, काली मिरच और गोरोचन इन सबको एकत्र पीसकर नेत्रोंमें आंजनेसे तन्द्रा दूर होती है ॥ ४९४ ॥

सन्निपातज्वरोत्पन्नां युक्त्या तन्द्रां जयेद्भिषक्। उपद्रवः कष्टतमो ज्वराणां सविशेषतः ॥ ४९५ ॥

सन्निपात ज्वरमें उत्पन्न हुई तन्द्राको वैद्य बडी युक्तिसे जीते, क्योंकि ज्वरमें विशेषकर यह अत्यंत कष्टतम उपद्रव है ॥ ४९५ ॥

अभिन्यासज्वरके लक्षण ।

त्रयश्च कुपिता दोषा उरःस्रोतोऽनुगा भृशम् । आमा विबद्धा ग्रथिता बुद्धीन्द्रियमनोऽनुगाः ॥ ४९६ ॥ जनयन्ति महाघोरमभिन्यासं ज्वरं नृणाम्। प्रस्तब्धगात्रस्त्ववाग्मी नष्टचेष्टो न कांक्षते ॥ ४९७ ॥ न च दृष्टिर्भवेत्तस्य समर्था रूपदर्शने । न च गन्धरसस्पर्शशब्दान्प्राप्याथ बुध्यते॥४९८॥ शिरो लोठयतेऽभीक्ष्णमाहारं नाभिनन्दति । कूजते तुद्यते चैवं प्रतिपत्तिश्च हीयते ॥ ४९९ ॥ कलं प्रभाषते किञ्चिदभिन्यासः स उच्यते । प्रत्याख्येयः स भूयिष्ठं कश्चिदेवात्र सिध्यति ॥ ५०० ॥

वातादि तीनों दोष कुपित होकर हृदयके स्रोतोंमें प्राप्त होकर आमसे विबद्ध और ग्रथित होकर बुद्धि, इन्द्रिय और मनके अनुगामी होकर घोर अभिन्यास ज्वरको उत्पन्न करते हैं । इसके होनेसे रोगीके शरीरमें निश्चेष्टता, बोलनेमें असमर्थता, नेत्र और कानोंमें जडता, देखने, सूँघने, छूने और सुननेमें असमर्थता होती है । तथा वह शिरको इधर उधर पटके, शयन करनेपर वारंवार करवटें लेवे अर्थात् किसीप्रकार चैन नहीं हो, आहारमें अरुचि, कूजे, उसके शरीरमें तोडनेकेसी पीडा हो और कंठसे थोडा बोले, इसको अभिन्यास सन्निपात कहते हैं । वह सन्निपातरोगी प्रायः नष्ट हो जाता है, कदाचित् कोई नीरोग होता है ॥ ४९६–५०० ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । ते घ्नन्ति संहता धातोः पाकान्मुञ्चन्ति चान्यथा ॥ ५०१ ॥

इस सन्निपातरोगमें सात दिनमें या दश दिनमें या वारह दिनमें धातुओंकर पाक होनेसे रोगीकी मृत्यु होती है और दोषोंका पाक होनेसे रोगसे मुक्ति होती है ॥ ५०१ ॥

एतत्तु हारीतस्त्वाह घ्नन्ति मुञ्चन्ति वा नरम् । दिवसैर्द्विगुणैः सप्तनवैकादशभिः क्रमात् ॥ ५०२ ॥

अन्य आचार्य्य कहते हैं कि–धातु और दोषोंके पचनेके अनुसार सन्निपात १४ या ९. अथवा ११ दिनमें मनुष्यको मारदेता है अथवा छोड देता है५०२

दुर्गेऽम्भसि यथा मग्नं भाजनं त्वरया बुधः। गृह्णीयात्तलमप्राप्तं तथाभिन्यासपीडितम् ॥ ५०३ ॥ निद्रोपेतमभिन्यासं क्षिप्रं विद्याद्गतौजसम् ॥५०४॥

जिसप्रकार अथाह जलमें गिरे हुए वर्तनको तलीमें पहुँचनेसे पहले ही पकड लेना चाहिये, उसीप्रकार अभिन्याससन्निपातमे पीडित रोगीका शीघ्र ही यत्न

करना चाहिये, क्योंकि इसमें निद्राके आनेपर रोगी तत्काल हतवीर्य हो जाता है ॥ ५०३ ॥ ५०४

चिकित्सा ।

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृताः । दशमूली शटी शृङ्गीवासाभार्ङ्गी पुनर्नवाः ॥ ५०५ ॥ तुल्या मूत्रेण निष्क्वाथ्य पीता स्रोतोविशोधनम् । अभिन्यासज्वरायासमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ ५०६ ॥

कलौंजी, पोहकरमूल, अंडकी जड, वनपसा, सोंठ, गिलोय, दशमूल, कचूर, काकडाशिंगी, अडूसा, भारंगी और पुनर्नवा इन सबको समान भाग लेकर गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर पान करे तो सब शरीरके स्रोत शुद्ध होजाते हैं और शीघ्र ही अभिन्यास ज्वर नष्ट हो जाता है ॥ ५०५ ॥ ५०६ ॥

मातुलुङ्गाश्मभिद्बिल्वव्याघ्रीपाठारुबूकजः । क्वाथो लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासानाह शूलनुत् ॥ ५०७ ॥

बिजौरे नीबूकी जड, पाषाणभेद, बेलगिरी, कटेरी, पाढ और अंडकी जड इनके क्वाथमें गोमूत्र और सैंधानोन मिलाकर पान करे तो अभिन्यासज्वर, आनाह और शूल दूर होता है ॥ ५०७॥

व्याघ्रीदुरालभाभार्ङ्गीशटीशृङ्गीसपौष्करम् । पक्वाम्बु श्लेष्महृदेयमभिन्यासप्रशान्तये ॥ ५०८ ॥

कटेरी, धमासा, भारंगी, कचूर, काकडाशिंगी और पोहकरमूल इनका क्वाथ पान करनेसे कफ और अभिन्यासज्वर दूर होता है ॥ ५०८ ॥

भार्ङ्गी पुष्करमूलञ्च रास्ना बिल्वं समुस्तकम् । नागरं दशमूलञ्च पिप्पलीविषसाधितम् ॥ ५०९ ॥ हिंग्वार्द्रकरसोपेतं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् । सन्निपातज्वरं घोरमभिन्यासञ्च दारुणम् । हृत्पार्श्वशूलमानाहं सद्यः पीतं नियच्छति ॥ ५१० ॥

भारंगी, पोहकरमूल, रायसन, बेलगिरी, नागरमोथा, सोंठ, दशमूल, पीपल और अतीस इनके क्वाथमें हींग और अदरखका रस तथा पीपलका चूर्ण डालकर पीवे तो घोर अभिन्यास सन्निपातज्वर, हृदय और पसलियोंका शूल एवं अफारा तत्काल दूर होता है ॥ ५०९ ॥ ५१० ॥

बीजपूरकबिल्वाश्मभेदकबृहतीद्वयम् । सकाशकं तथैरण्डं जले चाष्टगुणे स्मृतम् ॥५११॥ पक्त्वा गोमूत्रसंपृक्तं विडसौवर्चलान्वितम् । हृद्वस्तिशूलमानाहमभिन्यासे ज्वरे हितम् ५१२॥

बिजौरे नीबूकी जड, बेलगिरी, पाषाणभेद, कटेरी, बडी कटेरी, काँस और अंडकी जड इन सबको समान भाग लेकर अठगुने जलमें पकावे । जब क्वाथ तैयार हो जाय तब उसमें गोमूत्र, विडलवण और काला नोन मिलाकर पान करे । इससे हृदय और बस्तिका शूल, आनाह तथा अभिन्यासज्वर नष्ट होता है ॥ ५११ ॥ ५१२ ॥

दन्तीं द्रवन्तीं बृहतीमेरण्डं बीजपूरकम् । श्यामां व्याघ्रीञ्च निष्क्वाथ्याभिन्यासे बहुवर्चसि ॥ ५१३ ॥

दंती, मूसाकर्णी, बडी कटेरी, अंडकी जड बिजौरे नीबूकी जड, अनंतमूल और कटेरी इनका क्वाथ पान करनेसे अभिन्यास ज्वर और मलकी अधिकता दूर होती है ॥ ५१३ ॥

सिंही व्याघ्र्यमृता द्राक्षा अजाजी सकटुत्रिकम् । शृङ्गी विडङ्गञ्च समं पक्त्वा विस्राव्य साधयेत् ॥ ५१४ ॥ घृताक्तैस्तण्डुलैर्भृष्टैः पेयामुष्णां ज्वरी पिबेत् । हिक्काश्वासी च कासी च तथाभिन्यासपीडितः ॥ विबद्धवातविण्मूत्रः पानमेतत्प्रयोजयेत् ॥५१५॥

कटाई, बडी कटेरी, गिलोय, दाख, जीरा, त्रिकुटा, काकडाशिंगी और वायविडंग इन सबको समान भाग लेकर क्वाथ बनावे । फिर घीमें भुने हुए चावलोंकी पेया बनाकर उस क्वाथमें मिलाकर गरमा-

गरम पीवे इससे हिचकी, श्वास, खांसी, अभिन्यासज्वर, वायु, मल और मूत्रकी बद्धता दूर होती है ॥५१४॥ ॥५१५॥

बृहती पौष्करं भार्ङ्गी शटी शृङ्गी दुरालभा। पक्त्वा पानं प्रशंसन्ति श्लेष्मा तेनोपशाम्यति ॥ ५१६ ॥

बडी कटेरी, पोहकरमूल, भारंगी, कचूर, काकडाशिंगी, धमासा, इनका काथ बनाकर पान करनेसे कफ शांत होता है ॥ ५१६ ॥

त्रिवृद्विशालाकटुकात्रिफलारग्वधैः कृतः। सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥ ५१७ ॥

निसोत, इन्द्रायण, कुटकी, त्रिफला और अमलतास इनके काथमें जवाखार डालकर पान करे। यह भेदन और सर्वप्रकारके ज्वरोंको हरनेवाला है ॥ ५१७ ॥

तिक्ताभयात्रिवृद्दन्तीफलं वै राजवृक्षजम्। क्षाराढ्यः सैन्धवोपेतः क्वाथो भेदी ज्वरापहः ॥ ५१८ ॥

कुटकी, हरड, निसोत, जमालगोटा और अमलतास इनके काथमें जवाखार और सेंधानोंन डालकर पान करनेसे विरेचन होकर ज्वर दूर होता है॥५१८॥

आर्द्रकस्वरसोपेतं सिन्धूत्थं सकटुत्रिकम्। प्रबोधाय मुखे दद्यान्नस्यञ्च मरिचैन वै ॥ ५१९॥

अदरखके रसमें सेंधानोन और त्रिकुटेके चूर्णको मिलाकर चैतन्य करनेके लिये मुखमें धारण करे अथवा काली मिरचोंको अदरखके रसमें पीसकर नास लेवे ॥ ५१९ ॥

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम्। अन्यद्वा सिद्धविहितं नस्यं तीक्ष्णं प्रयोजयेत् ॥ ५२० ॥

बिजौरे नीबू और अदरखके रसमें तीनों लवणोंके चूर्णको मिलाकर कुछ गरम करके उसका अथवा अन्यान्य तीक्ष्ण औषधियोंका नास देवे ॥ ५२० ॥

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः। अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ ५२१ ॥

शिरसके बीज, पीपल, काली मिरच और सेंधानोंन इन सबको एकत्र गोमूत्रमें पीसकर अंजन बनावे। इस अंजनको नेत्रोंमें लगानेसे अथवा लशुन, मैनसिल और वच इनका अंजन बनाकर नेत्रोंमें लगानेसे चैतन्य उत्पन्न होता है ॥ ५२१ ॥

शिरीषबीजं मरिचं बस्तमूत्रेण तत्समम्। अञ्जनं तदभिन्यासे संज्ञाबोधनमिष्यते ॥ ५२२ ॥

शिरसके बीज और काली मिरच इनको एकत्र बकरेके मूत्रमें पीसकर नेत्रोंमें आँजनेसे संज्ञा उत्पन्न होती है ॥ ५२२ ॥

मातुलुङ्गरसं तस्य हिंगुशुण्ठीयुतं मुखे। दद्यात्प्रधमनं तीक्ष्णं कटुतिक्तोपसंहितम् ॥ ५२३ ॥

बिजौरेके रसमें हींग और सोंठ मिलाकर मुखमें धारण करे तथा तीक्ष्ण और चरपरी एवं कडवी औषधियोंको नेत्र, नाक और कानमें फूंके ॥५२३॥

पटोलपत्रं सुषवी बृहती कण्टकारिका। मरिचं पिप्पली बिल्वं चिरबिल्वं सचित्रकम् ॥५२४॥ करञ्जबीजं मञ्जिष्ठा त्रायन्ती विश्वभेषजम्। गलप्रबोधनं—श्रेष्ठमभिन्यासज्वरापहम्॥ ५२५ ॥

पटोलपात, करेला, बडी कटेरी, कटेरी, कालीमिरच, पीपल, बेलगिरी, करंज, चीता, करंजबीज, मजीठ, त्रायमाण और सोंठ इनका काथ कंठको शुद्ध करता है और अभिन्यासज्वरको नष्ट करता है ॥ ५२४ ॥ ॥ ५२५ ॥

करञ्जो बिल्वमञ्जिष्ठे त्रायन्त्यग्निः पटोलकम्। बृहत्यौ सुषवी त्र्योषं क्वाथः स्याद्गलशोधनः ॥ ५२६ ॥

करंजकी छाल, बेलगिरी, मजीठ, त्रायमाण, चीता, पटोलपात, बडी कटेरी, कटेरी, करेला और त्रिकुटा इनका काथ कंठको शुद्ध करता है ॥५२६॥

---

१ लशुन मैनसिल और बचको उपरोक्त अञ्जनकी औषधियोंमें ही मिलाकर अञ्जन करावे।

चिकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नस्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् बेहोशी दूर न हो तो लोहेकी सलाईको अग्निमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जड़में घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचता है ५२८

तं जयेच्छोधितस्रावैः सर्पिःपानप्रलेपनैः। प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरस्राव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दाग देना, कफपित्तनाशक, वमन और कवलग्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरघ्नक्वाथसाधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्वित्रिः काय्यों यूषादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक काथमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा यूषादिक दो या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो वह निर्विघ्न पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गैरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकट्फलकाञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेरु, धूल, सोंठ, वच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकीज ड़में लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः। आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृक्ष, पर्वतादिसे गिरनेसे, अभिचार(शत्रु के द्वारा किये हुए मरणादि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरु आदिके शापसे) और अभिषंग(भूतादिककी बाधा और कामादिके वेगसे)इन सब कारणोंसे वातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुक ज्वरको उत्पन्न करते हैं, वह आगन्तुक ज्वर-वात, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जाने ॥

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च। भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥५३४॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा ॥ ५३५ ॥

विषके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर कालापन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोडने केसी पीड़ा और मूर्च्छा यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औषधकी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और वमन ये सब लक्षण होते हैं॥५३५॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् । हृदये वेदना चास्य गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः । अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥५३७॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, कोपसे उत्पन्न हुये ज्वरमें काँपता है, अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतबाधासे उत्पन्न हुये अभिषंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतबाधासे तीनों

दोष कुपित होते हैं और ये ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण हो जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिषंगोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्वस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रवाधनैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विष और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगन्धित औषधियोंके क्वाथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्ये नार्य्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझानेसे—धीरज बंधानेसे, इष्टपदार्थोंके मिलनेसे, वातनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिषः पानं कफापित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसौदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्ताधिक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चात् नीमकी छाल और देवदारुका क्वाथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका क्वाथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्न हुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसोदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति । तस्य प्रशमनं कार्य्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा विनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दोष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् । कषायमधुरास्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अर्थात् शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कषैली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मद्यैर्द्रव्यैश्च सात्म्यैश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ५४९ ॥

चिकित्सिते कृतेऽप्येवं यस्य संज्ञा न जायते । ललाटे पादयोर्वापि तस्य दाहः प्रशस्यते ॥ ५२७ ॥

इन सब उपरोक्त अंजन नस्य आदिके प्रयोग करनेसे भी संज्ञा उत्पन्न न हो अर्थात् बेहोशी दूर न हो तो लोहेकी सलाईको अग्निमें तपाकर रोगीके दोनों पाँव और ललाटमें दाग देवे ॥ ५२७ ॥

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुणः । शोथः सञ्जायते तेन कश्चिदेव विमुच्यते ॥ ५२८ ॥

सन्निपातज्वरके अंतमें कानकी जडमें घोर सूजन उत्पन्न होती है, उस सूजनसे कोई रोगी बचता है ५२८

तं जयेच्छोधितस्रावैः सर्पिःपानप्रलेपनैः। प्रदाहैः कफपित्तघ्नैर्वमनैः कवलग्रहैः ॥ ५२९ ॥

उसको रुधिरस्राव (जोंक आदि लगाना), घृतपान, दाग देना, कफपित्तनाशक, वमन और कवलग्रह आदि उपचारोंसे जीते ॥ ५२९ ॥

जीर्णानां रक्तशालीनां ज्वरघ्नक्वाथसाधितः । प्रसृतस्त्वोदनो द्वित्रिः कार्यो यूषादिकोऽपि वा ॥ ५३० ॥ स चेज्जीर्यत्यविघ्नेन ज्वरी जीवेत्तदा ध्रुवम् ॥ ५३१ ॥

ज्वरनाशक काथमें पुराने लाल शालिचावलोंका भात अथवा यूषादिक दो या तीन प्रसृत परिमाण सिद्ध करके देवे, जो वह निर्विघ्न पचजाय तो रोगी निश्चय बच जाता है ॥ ५३० ॥ ५३१ ॥

गैरिकं पांशुकं शुण्ठीवचाकट्फलकाञ्जिकैः । कर्णशोथहरो लेपः सन्निपातज्वरे भृशम् ॥ ५३२ ॥

गेरु, धूल, सोंठ, वच कायफल इन सबको एकत्र कांजीमें पीसकर गरम करके कानकीज डमें लगावे, इससे कर्णशोथ दूर होता है ॥ ५३२ ॥

आगन्तुकज्वर ।

अभिघाताभिचाराभ्यामभिशापाभिषङ्गतः। आगन्तुर्जायते दोषैर्यथास्वन्तं विभावयेत् ॥ ५३३ ॥

अभिघात (तलवार, लाठी आदिकी चोट लगनेसे, या वृक्ष, पर्वतादिसे गिरनेसे, अभिचार(शत्रु के द्वारा किये हुए मरणादि प्रयोगोंके करनेसे), अभिशाप (गुरु आदिके शापसे) और अभिषंग(भूतादिककी बाधा और कामादिके वेगसे)इन सब कारणोंसे वातादिक दोष कुपित होकर आगन्तुक ज्वरको उत्पन्न करते हैं,यह आगन्तुक ज्वर-वात, पित्त और कफ इन भेदोंसे तीन प्रकारका है जिस दोषकी अधिकता हो उसे जाने ॥

श्यावास्यता विषकृते दाहोऽतीसार एव च । भक्तारुचिः पिपासा च तोदश्च सह मूर्च्छया ॥५३४॥ औषधीगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुस्तथा ॥ ५३५ ॥

विषके योगसे उत्पन्न हुए ज्वरमें मुखपर कालापन, दाह, अतिसार, भोजनमें अरुचि, तृषा, तोडने केसी पीडा और मूर्च्छा यह सब लक्षण होते हैं ५३४ औषधकी गंधसे जो ज्वर आता है उसमें मूर्च्छा, शिरोरोग और वमन ये सब लक्षण होते हैं॥५३५॥

कामजे चित्तविभ्रंशस्तन्द्रालस्यमभोजनम् । हृदये वेदना चास्य गात्रञ्च परिशुष्यति ॥ ५३६ ॥

कामज्वरमें चित्तभ्रम होना, तन्द्रा, आलस्य, भोजनमें अरुचि, हृदयमें पीडा और शरीरका सूखना ये सब लक्षण होते हैं ॥ ५३६ ॥

भयात्प्रलापः शोकाच्च भवेत्कोपाच्च वेपथुः । अभिचाराभिशापाभ्यां मोहस्तृष्णा च जायते ॥ भूताभिषङ्गादुद्वेगो हास्यरोदनकम्पनम् ॥५३७॥

भय और शोकसे उत्पन्न हुये ज्वरमें रोगी प्रलाप करता है, कोपसे उत्पन्न हुये ज्वरमें काँपना है, अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरमें मोह और तृषा होती है, भूतबाधासे उत्पन्न हुये अभिषंग ज्वरमें उद्वेग, हास्य, रोना और कम्प होता है ॥ ५३७ ॥

कामशोकभयाद्वायुः क्रोधात्पित्तं त्रयो मलाः । भूताभिषङ्गात्कुप्यन्ति भूतसामान्यलक्षणाः ॥ ५३८ ॥

काम, शोक और भयसे वात कुपित होती है, क्रोधसे पित्त कुपित होता है, एवं भूतबाधासे तीनों

दोष कुपित होते हैं और ये ही भूतोंके सामान्य लक्षण होते हैं, (जिस भूतका जैसा लक्षण हो तत्समान लक्षण हो जाता है) ॥ ५३८ ॥

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिभिर्जयेत् । दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ॥ ५३९ ॥

अभिचार और अभिशापसे उत्पन्न हुये ज्वरको होम, दान, स्वस्तिवाचन, पुण्याहवाचन और अतिथि पूजनसे जीते ॥ ५३९ ॥

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनैः । जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मनःस्वास्थ्यैश्च मानसैः ॥ ५४० ॥

भूताभिषंगोत्थ ज्वरको बंध, आवेशन और ताडनादि कर्मोंसे जीते और मानसिक ज्वरको मनको स्वस्थ करनेसे जीते ॥ ५४० ॥

औषधीगन्धविषजौ विषपित्तप्रबाधनैः । जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैर्भिषक् ॥ ५४१ ॥

औषधि और विषकी गन्धसे उत्पन्न हुये ज्वरको विष और पित्तनाशक औषधियोंसे अथवा सम्पूर्ण सुगंन्धित औषधियोंके काथसे जीते ॥ ५४१ ॥

क्रोधजे पित्तजित्काम्ये नार्य्याः सद्वाक्यमेव च । आश्वासेनेष्टलाभेन वायोः प्रशमनेन च । हर्षणैश्च शमं यान्ति कामशोकभयज्वराः ॥५४२ ॥ कामात्क्रोधज्वरो नाशं क्रोधात्कामसमुद्भवः । याति ताभ्यामुभाभ्याञ्च भयशोकसमुत्थितः ॥ ५४३ ॥

क्रोधसे उत्पन्न हुये ज्वरमें पित्तनाशक क्रिया और कामज्वरमें सुन्दर स्त्रियोंके मधुरवचनोंके द्वारा उपचार करे । समझानेसे—धीरज बंधानेसे, इष्टपदार्थोंके मिलनेसे, वातनाशक यत्नोंसे और हर्षजनक वार्ता अथवा अन्य हर्षजनक पदार्थोंसे काम, शोक और भयसे उत्पन्न हुआ ज्वर दूर होता है । कामसे क्रोधज्वर नष्ट होता है और क्रोधसे कामज्वर नष्ट होता है तथा काम और क्रोधसे भयज्वर एवं शोकज्वर दूर होता है ॥ ५४२ ॥ ५४३ ॥

विसर्पेण ज्वरो यश्च यश्च विस्फोटकज्वरः । तत्रादौ सर्पिषः पानं कफापित्तोत्तरे भवेत् ॥ ५४४ ॥ निम्बदारुकषायं वा हितं सौमनसं तथा । श्रमक्षयोत्थे भुञ्जीत घृताभ्यक्तं रसौदनम् ॥ ५४५ ॥

जिसके विसर्पसे अथवा विस्फोटकसे कफपित्ताधिक ज्वर उत्पन्न हो तो उसको प्रथम घृत पान करावे, पश्चात् नीमकी छाल और देवदारुका काथ पिलावे अथवा चमेलीके पत्तोंका काथ पान करावे, श्रम और क्षयसे उत्पन्न हुये ज्वरमें घृतसंयुक्त रसौदन को भक्षण करे ॥ ५४४ ॥ ५४५ ॥

रोगोत्थानप्रकोपाभ्यां यो ज्वरो जायते नृणाम् । शमयेत्पाचयेद्वापि यथायोगैश्चिकित्सकः ॥ ५४६ ॥

अन्यान्य रोगोंके उत्पन्न होनेसे अथवा कुपित होनेसे जो ज्वर उत्पन्न होता है उसमें यथादोषानुसार शमन और पाचन औषधि देवे ॥ ५४६ ॥

स्त्रीणामप्यप्रजातानां प्रजातानां तथाऽहितैः । स्तन्यावतरणे चैव ज्वरो दोषैः प्रकुप्यति । तस्य प्रशमनं कार्य्यं यथादोषविधानतः ॥ ५४७ ॥

पुत्रवाली अथवा विनापुत्रवाली स्त्रियोंके अहितकारक कारणोंसे और स्तनोंमें दूध प्रवर्तन होनेसे दोष कुपित होकर ज्वरको उत्पन्न करते हैं, उसमें यथादोषानुसार औषधि देनी चाहिये ॥ ५४७ ॥

अभिघातज्वरे कुर्यात्क्रियामुष्णविवर्जिताम् । कषायमधुरास्निग्धां यथादोषमथापि वा ॥ ५४८ ॥

अभिघातज्वरमें उष्णवर्जित अर्थात् शीतल क्रिया तथा दोषानुसार कषैली, मधुर और स्निग्ध औषधि देवे ॥ ५४८॥

अभिघातज्वरो नश्येत्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः । मद्यैर्द्रव्यैश्च सात्म्यश्च तथा मांसरसौदनैः ॥ ५४९ ॥

अभिघातज्वरमें घृतपान करावे और उसके शरीर पर घृतकी मालिश करावे तथा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार मेधाजनक और सात्म्य मांसरस और भात आदि द्रव्य देवे ॥ ५४९ ॥

व्यधबन्धश्रमात्यभ्रभङ्गभ्रंशसमुद्भवान्। ज्वरानुपाचरेत्पूर्वं सुस्निग्धक्षीर भोजनैः ॥ ५५० ॥

व्यध (बेध, छेदन, भेदन), बन्धन (बांधना), परिश्रम (अधिकमार्गका चलना) और गिरनेसे शरीर भंग होने पर इन कारणोंसे उत्पन्न हुए ज्वरमें प्रथम स्निग्ध और दूधका भोजन देवे ॥ ५५० ॥

इति आगन्तुकज्वरचिकित्सा ।

विषमज्वर ।

दोषोऽल्पोऽहितसम्भूतो ज्वरोत्सृष्टस्य वा पुनः। धातुमन्यतमं प्राप्य करोति विषमज्वरम् ॥ ५५१ ॥

ज्वरसे छुटा हुये मनुष्यके अल्पदोष भी कुपथ्य आहारादि द्वारा कुपित होकर रक्तादि किसी धातुमें प्राप्त होकर विषमज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५१॥

संततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ।-सन्ततो रसधातुस्थः सततो रक्तधातुगः। भिषजा चैव विज्ञेयः सोन्येद्युः पिशिताश्रितः ॥ ५५२ ॥ मेदोगतस्तृतीयेऽह्नि ह्यस्थिमज्जागतः पुनः । कुर्य्याच्चातुर्थिकं घोरमंतकं रोगसंकरम् ॥ ५५३ ॥

यह विषमज्वर, संतत, सतत, अन्येद्युष्क, तृतीयक और चातुर्थिक इन भेदोंसे पांच प्रकारका है। ये दोष रसमें प्राप्त होकर संततज्वरको उत्पन्न करते हैं, रक्त धातुमें प्राप्त होकर सततज्वरको उत्पन्न करते हैं, मांसमें प्राप्त होकर अन्येद्युष्कज्वरको उत्पन्न करते हैं, मेदमें जाकर तृतीयकज्वरको उत्पन्न करते हैं, अस्थि और मज्जामें प्राप्त होकर मृत्युस्वरूप रोगसंकर चातुर्थिकज्वरको उत्पन्न करते हैं ॥ ५५२॥ ५५३ ॥

सप्ताहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा । सन्तत्यायोऽविसर्गी स्यात्सन्ततः स निगद्यते ॥ ५५४ ॥

सात या दश अथवा बारह दिनमें जो बराबर एकसा बना रहै, घटे बढ़े नहीं उसको संततज्वर कहते हैं ॥ ५५४ ॥

अहोरात्रे सततको द्वौकालावनुवर्त्तते। अन्येद्युष्कस्त्वहोरात्रादेककाले प्रवर्त्तते ॥ ५५५ ॥ तृतीयकस्तृतीयेऽह्नि चतुर्थेऽह्नि चतुर्थकः । केचिद्भूताभिषङ्गोत्थं ब्रुवते विषमज्वरम् ॥ ५५६ ॥

सततज्वर दिन रात दो समयमें दोबार आता है, अन्येद्युष्कज्वर रातदिनमें एकबार आता है। तृतीयक ज्वर तीसरे दिन आता है और चातुर्थिकज्वर चौथे दिन आता है । कोई वैद्य भूताभिषंगोत्थ ज्वरको विषमज्वर कहते हैं ॥ ५५५ ॥ ५५६ ॥

यः स्यादनियतात्कालाच्छीतोष्णाभ्यां तथैव च । वेगतश्चापि विषमः स ज्वरो विषमः स्मृतः ॥ ५५७ ॥

जो ज्वर शीत और उष्ण कारणोंसे विना समय आ जाय और जिसका वेग भी विषम हो उसको विषम ज्वर कहते हैं ॥ ५५७ ॥

कफपित्तात्त्रिकग्राही पृष्ठाद्वातकफात्मकः । वातपित्ताच्छिरोग्राही त्रिविधः स्यात्तृतीयकः ॥ ५५८ ॥

अब तृतीयकज्वरके तीन भेद कहते हैं, जो तृतीयक ज्वर कफपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम त्रिकस्थानसे प्रकट होकर सम्पूर्ण शरीरमें व्याप्त हो जाता है । जो वात कफसे उत्पन्न होता है, वह प्रथम पीठसे प्रकट होकर सब शरीरमें फैल जाता है और जो तृतीयकज्वर वातपित्तसे उत्पन्न होता है वह प्रथम शिरसे प्रकट होकर सर्वशरीरमें विस्तृत हो जाता है ॥ ५५८ ॥

चातुर्थिको दर्शयति प्रभावं द्विविधं ज्वरः ।जङ्घाभ्यां श्लैष्मिकः पूर्वं शिरसोऽनिलसम्भवः ॥ ५५९॥